प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)

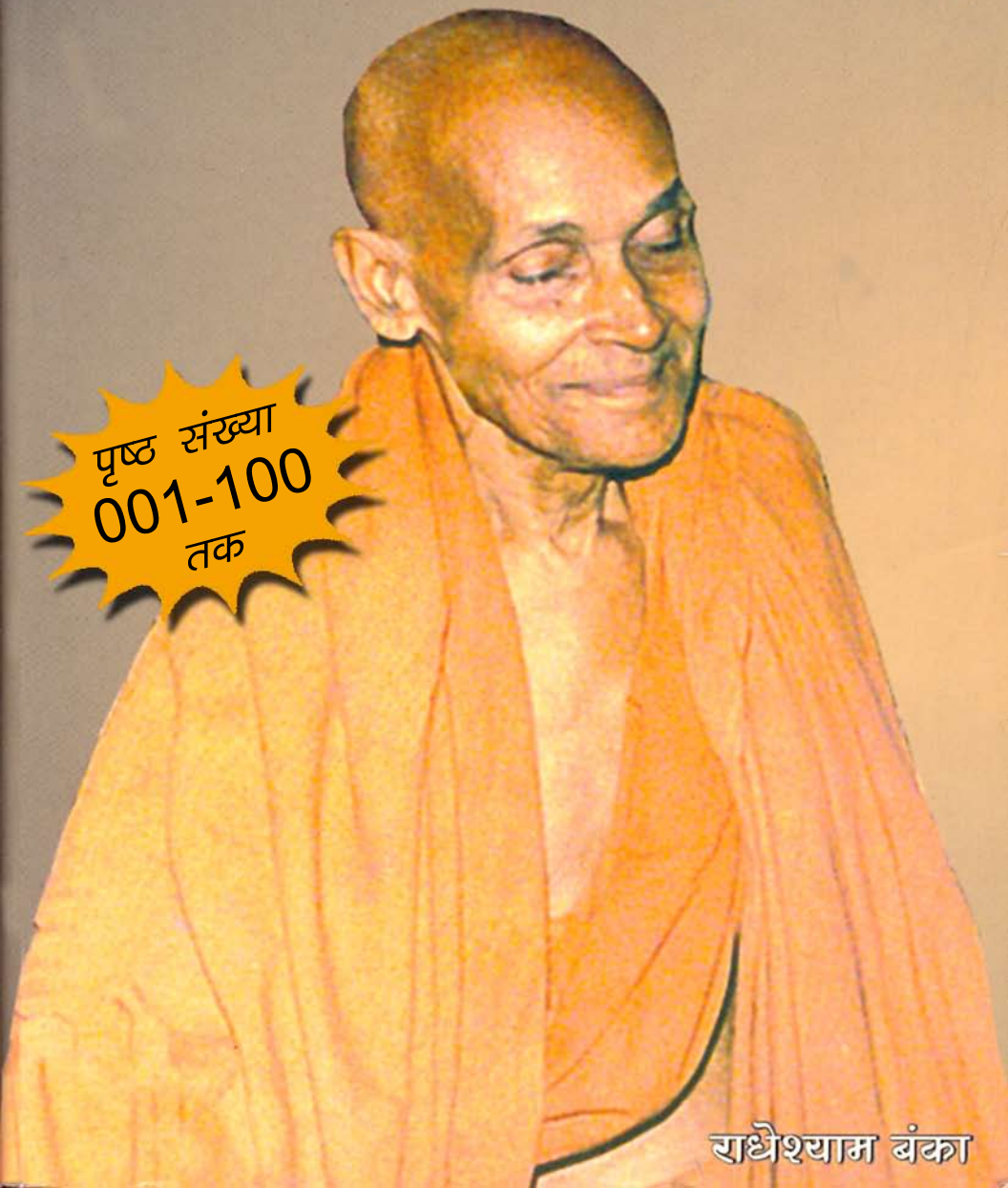

पृष्ठ संख्या
001-100
तक

राधेश्याम बंका

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा
(द्वितीय भाग)

राधेश्याम बंका

प्रकाशक
योगेन्द्रनाथ बंका
हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति,
पो. गीतावाटिका,
गोरखपुर - २७३००६

वितरक
अनुराग कुमार बंका
गोरखपुर मशीनरी स्टोर,
जलकल भवन, गोलघर,
गोरखपुर - २७३००१

प्रकाशन तिथि
सं. २०६३ वि. पौष शुक्ल ९,
२८ दिसम्बर, २००६

मूल्य
१०० रुपये

द्वितीय संस्करण
१००० (एक हजार)

मुद्रक
न्यू जैक प्रिंटिंग प्रेस प्रा. लि.,
३८, सोनावाला रोड,
गोरेगांव (पूर्व), मुंबई - ४०० ०६३.

जीवन सोपान

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ
१	भूमिका : नमाम्यहं प्रीति-रसावतारम्	एक
२	प्रकाशककी ओरसे	चार
३	प्रकाशककी ओरसे	पाँच
४	सन् १९५६ की राधाष्टमी	१
५	काष्ठ मौन व्रत	२
६	अन्तर्मुखी जीवनकी झलक	१२
७	जन्मदात्री माँकी दिव्य परिणति	१४
८	महाभावकी दीक्षा	१८
९	त्रिमासीय रविवार	२७
१०	रसोपासना मंत्रोंकी दिव्योपलब्धि	२९
११	प्रियतमसे प्रेम कलह	३१
१२	लोकोत्तर भावपूर्ण प्रसंग	३३
१३	काष्ठ मौनावधिमें गम्भीर अन्तर्मुखता	४०
१४	'जय जय प्रियतम' काव्य	४४
१५	शिमलापालकी यात्रा	४९
१६	षोडशगीत	५१
१७	गुरुजनोंको वन्दन	६१
१८	कमली मैया	६२
१९	दधि-कर्दमोत्सवका उल्लास	६७
२०	स्विटजरलैण्ड निवासी श्रीरुडोल्फ सुएस	७२
२१	भगवती श्रीविष्णुप्रिया जन्मोत्सव	७६
२२	कालती बुढ़ियाका श्राद्ध दिवस	८७
२३	पूज्य सेठजीका महाप्रयाण	८८
२४	पण्डित नेहरुजीके सूक्ष्म देहसे बातचीत	९२
२५	रसकी बूँदें	९४
२६	व्रज-रसके पदोंका गायन	९६
२७	बरसानेके मन्दिरमें	१०१

२८	मंगल प्रवाहिणी भगवती गंगा	१०३
२९	'श्रीकृष्ण चरितामृत' पर शुभाशंसन	१०५
३०	श्रीमद्भागवत पुराणका लेखन	१०९
३१	श्रीगिरीराज परिक्रमाका शुभारम्भ	११०
३२	सरिता और सागर	११५
३३	भगवान श्रीविष्णुसे संभाषण	११८
३४	'राधा सुधा निधि' की कथा	११९
३५	स्वजन काव्य गोष्ठी	१२०
३६	गोरक्षा आन्दोलनमें गोपनीय सहयोग	१२५
३७	एक छिपे भक्त	१२७
३८	गैरिक वस्त्रकी मर्यादा	१३१
३९	एक आदर्श विवाह	१३७
४०	द्वितीय काष्ठमौनपर प्रवचन	१४०
४१	बात-बातमें सँभाल	१४५
४२	परिक्रमाके समय दिव्यानुभूति	१४६
४३	भावोच्छलन और जड़िमा भाव	१४७
४४	उच्छिट कणोंका प्रभाव	१५०
४५	एक घायल कौवा	१५१
४६	बाबूजीका लीला-प्रवेश	१५३
४७	गीतावाटिकामें समाधि	१५५
४८	पूजा-पाठका विसर्जन	१५८
४९	प्रीतिकी वेदीपर	१५९
५०	अधिकारकी सार्थकता	१६१
५१	लिखित अक्षरोंका समादर	१६३
५२	कलाईमें चोट	१६३
५३	कथन सहैतुक था	१६४
५४	कैंसर अस्पताल	१६६
५५	सरकारी धनकी वापसी	१६७
५६	पाँच पदोंका गायन	१६८
५७	सिखावनकी अनोखी रीति	१७२
५८	स्मारकका निर्माण	१७५

५९	तरु-लताओंके प्रति आत्मभाव	१७७
६०	हरिनाम कीर्तन माधुरी	१७९
६१	दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोले	१८०
६२	भावकु भक्त श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तव	१८९
६३	लकवाका झटका	१९८
६४	नियमानुवर्तनमें सीमातीत तत्परता	२००
६५	सुखद और दुखद क्षण	२०२
६६	तृतीय काष्ठ मौन व्रत	२०६
६७	श्रीगिरिराज परिक्रमाके नियम	२१५
६८	परिवर्तनके प्रति अरुचि	२१६
६९	ग्रन्थावलोकनमें निमग्नता	२१८
७०	मधुराष्टकका गायन	२१९
७१	खाँसी और पोस्ता	२२०
७२	श्रीजज साहबका निधन	२२१
७३	रुग्ण होकर भी रुग्णातीत	२२४
७४	प्रिय विष्णुकी तीर्थयात्रा	२२४
७५	श्रीगिरिराज परिक्रमा	२२७
७६	स्व-दृष्ट पूतना लीलाका वर्णन	२३१
७७	सन्निपातका प्रकोप	२३३
७८	श्रीरामचरित मानसका प्रतिपाद्य	२३४
७९	चातकी निष्ठा	२३८
८०	परामार्थ और प्रपञ्च	२४१
८१	श्रीगिरिराज परिक्रमाकी एक झाँकी	२४३
८२	भगवद्रुचि और कार्यचुनाव	२४६
८३	सरस कथाका आकस्मिक आयोजन	२४८
८४	श्रीआनन्दमयी माँ	२५१
८५	विरहिणी बहिन कुमुद	२५४
८६	मन्दिरकी मूर्तियोंका चयन	२६१
८७	अस्वस्थता	२६३

८८ सन् १९८४ का श्रीराधाष्टमी महोत्सव २६६
८९ बाबाकी 'मिन्तर' श्रीठकुरी बाबू २७०
९० दो अष्टयाम लीलाएँ २७२
९१ बउआका महाप्रयाण २८२
९२ अटपटा उत्तर, अनोखी बात २९१
९३ श्रीडोंगरे महाराजजी की श्रीभागवत-कथा २९४
९४ भगन्दर रोगसे विभुक्ति ३०५
९५ मन्दिरमें प्राण-प्रतिष्ठा ३०७
९६ बाबा सन्निधिमें भोजन ३१५
९७ आस्तिक भावका प्रभाव ३१७
९८ श्रीमहाराजजीका अचानक आगमन ३१९
९९ मन्दिरकी सीढ़ियोंपर ३२२
१०० प्राकृतिक वातावरणमें श्रीयोगिनी लीला ३२४
१०१ बाबूजीकी जयन्तीके अवसरपर श्रीराम कथा ३२६
१०२ पूज्य पंडितजीकी भिक्षा ३३०
१०३ बाबाका जन्मोत्सव ३३१
१०४ विभिन्न भावदशाएँ ३३७
१०५ एक प्रेरणाप्रद पत्र ३४१
१०६ भाव-देहकी साधना ३४१
१०७ चरण-पादुकाका वन्दन ३४७
१०८ पूज्या माँका महाप्रयाण ३५४
१०९ जीवन-लीलाका संवरण ३५५
११० वृन्दावनसे श्रीमहाराजजीका पत्रात्मक उद्‌बोधन ३६०
१११ आन्तरिक निवेदन ३६२
११२ परिशिष्ट – समर्पणमूर्ति श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी ३६५

* * * * *

॥ श्रीहरिः ॥

नमाम्यहं प्रीति-रसावतारम्

यस्याः पाद-नखेन्दु-रश्मि-सुधया चित्तस्समुद्भासितः
कारुण्याम्बुधि-वाह-वेग-रभसा पापाः समुन्मूलिताः।
माञ्जिष्ठे वसने निलीन-मधुरप्रेमैक-पीतच्छविः
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा॥ १॥

जिनके चरणोंके नख-चन्द्रकी रश्मि-सुधासे मेरा चित्त भास्वर हो उठा, जिन करुणा-सागरके प्रवाहके आवेग युक्त थपेड़ेसे ही सभी पाप समूल विनष्ट हो गये, गैरिक वस्त्रोंमें छिपी हुई जिनकी मधुरा प्रीतिकी अद्वितीय पीतवर्णा छवि है, मैं उन राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त रसिक-भ्रमर निरन्तर बना रहूँ।

कृष्णस्त्वं ननु राधिकाऽपि मधुरा नीलाक्त-पीतोत्सवः
नित्यत्वं युगलोऽपि कोऽपि ललितो ह्यद्वैत लीलातनुः॥
कान्ता-कान्त-समाश्रितातिरसिका या प्रोज्ज्वला पावनी।
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा॥ २॥

तुम कृष्ण हो। तुम्हीं मधुर राधिका भी हो। तुम नील आभासे आच्छादित पीत-वर्णका आनन्द-विलास हो। तुम अद्वितीय नित्य-युगल हो। तुम्हारा तनु अद्वैत लीलाकी अभिव्यक्ति है। तुममें प्रियतम और प्रियतमाका नित्य निवास है। तुम जो रसमयी उज्ज्वल-रसकी पावन मूर्ति राधा हो, मैं उनके चरण-कमलोंमें आसक्ति-युक्त रसिक भ्रमर निरन्तर बना रहूँ।

अग्रे श्यामवपुस्तथैवमधरे पृष्ठेऽपि राराजते
वामे वाप्यपिसव्यकेऽपि पुरतो बाह्ये यथाभ्यन्तरे
दृश्ये द्रष्टरि दर्शनेन सकले प्रीणाति याम्माधवः
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा॥ ३॥

साँवर तनु ही आगे है, वही साँवर नीचे है, वही तो पीछे सुशोभित है। साँवर ही बाँये है और वही दाहिने एवं सामने है। वही बाहर है वही

भीतर है। इस प्रकार दृष्टामें दृश्यमें सभीमें अपने दर्शनोंसे जिसको माधव रिझाते हैं, उस राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त रसिक भ्रमर नित्य बना रहूँ।

कूजत्कोकिल-सारिका-खगकुले नृत्यन्मयूरावृते
ज्योत्स्ना-विच्छुरिते निकुंज-रमणे ह्यानन्द-वृन्दावने।
मंजुश्याम-सुरूपयाऽनुचरिता लीला ययोन्मादिनी
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।४।।

कोकिल, सारिका और पक्षी-समूहसे गुंजित, नाचते हुये मयूरोंसे आवृत, चन्द्रिकासे आलोकित निकुंज-रमणीय आनन्द-वृन्दावनमें जिसने मंजुश्यामाके सुरूपसे उन्मादिनी लीला प्रकाशित की, मैं उस राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त भ्रमर निरन्तर बना रहूँ।

त्वद्वात्सल्यमभीक्षमाण-मुदितः द्वारि स्थितो भिक्षुकः
याचेऽहं प्रणिपत्य कातरमनाः बद्धप्रणामांजलिः।
आह्लादैकमयी त्वयि प्रकटिता यान्तःस्थिता मोहिनी
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।५।।

तुम्हारी वत्सलता देखकर द्वारपर खड़ा हुआ प्रसन्न भिक्षुक मैं तुम्हें प्रणाम कर और हाथ जोड़कर कातर-मनसे यह याचना करता हूँ कि तुममें प्रकाशित और तुम्हारे भीतर अवस्थित जो आह्लाद-स्वरूपा मोहिनी राधा है, उसके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त रसिक भ्रमर निरंतर बना रहूँ।

मांगल्यो परमाश्रयस्त्वमसि मे श्रेयस्करी सम्पदः
चैका त्वं मम जीवने मधुरिमा चान्ते च भाग्योदयः
सोऽहन्ते पद-दास-दास-शरणो याचे दयाशेवधिं
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।६।।

तुम ही मेरे मंगलमय परम आश्रय हो, तुम ही श्रेयस्कर सम्पत्ति हो। तुम ही मेरे जीवनमें एकमात्र मधुरिमा हो और जीवनके अन्तमें तुम ही मेरे भाग्योदय होगे। हे दयानिधि, तेरे चरणोंके दासानुदासका

शरणागत मैं तुमसे माँगता हूँ कि उस राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त भ्रमर मैं निरन्तर बना रहूँ।

वार्धक्ये गलितो तनुश्च पलितो मुण्डोऽभवच्छ्रीहतः
विश्रब्धो वचनामृतैश्च भवतस्सुप्तो सुखी निर्वृतः।
साक्षान्मे शिखि-पिच्छ-मौलि-ललितं वंशी-ध्वनन्तं प्रियं
पार्श्वे मोहन-मोहिनी-सुरसिकामालोकयिष्ये खलु।।७।।

इस बुढ़ापेमें मेरा शरीर गल गया है। मुख श्री-हीन हो गया है। बाल पक गये हैं। फिर भी आपके वचन-सुधासे आश्वस्त होकर सुख और शांतिसे सो रहा हूँ। निश्चय ही मैं मयूर-पिच्छके मुकुटसे विलसित वंशी बजाते हुए प्रियको तथा उनके पार्श्वमें रसमयी मोहन-मोहिनीके दर्शन करूँगा।

नित्यं महाभाव-निमग्नशीलं प्रेष्ठं रसाद्वैत-सुदीप्तलीलम्
भक्तार्तिहं भागवताग्रगण्यं नमाम्यहं प्रीतिरसावतारम्।।८।।

महाभावमें सतत निमग्न रहना जिनका नित्य स्वरूप है, जो प्रियतम हैं, जिनमें रसाद्वैत-लीलाकी सुदीप्त अभिव्यक्ति है, जो भक्तोंकी व्यथाको दूर करनेवाले भक्त-शिरोमणि हैं उन प्रीति-रसावतार बाबाके श्रीचरणोंमें अजस्र प्रणामाञ्जलियाँ।

प्राण नाथ शर्मा
(विश्वम्भरशरण पाठक)

* * * * *

॥ श्रीहरिः ॥

प्रकाशक की ओर से

परम पूज्य बाबूजी एवं बाबा तथा गीतावाटिकाकी गरिमाको यत्किञ्चित् उद्‌घाटित करनेके लिये क्रमशः ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१— परम भागवत श्रीपोद्‌दारजी
२— संत हृदय श्रीपोद्‌दारजी
३— महाभावोदधि श्रीपोद्‌दारजी
४— वाटिका वेणु
५— वाटिका वातायन
६— वाटिका वैभव
७— वाटिका वीथी
८— वाटिकाके पत्र पुष्प (चार भागोंमें)

इन पुस्तकोंमें प्रकाशित प्रसंगोंके बारेमें यही समझना चाहिये कि जब जो तथ्य सामने आया, उसीको शब्द-बद्ध कर दिया गया। इन लिखित तथ्योंको पुस्तकाकार रूप प्रदान करते समय वर्षानुवर्षके क्रमको ध्यानमें नहीं रखा गया। निज जनोंकी ओरसे बार-बार यह अनुरोध किया जा रहा था कि पूज्य बाबाकी जीवन-धाराको आदिसे अन्ततक वर्षानुवर्ष-क्रमके अनुसार प्रस्तुत किया जाना चाहिये। इस अनुरोधको स्वीकार किया भाई श्रीभीमसेनजी चोपड़ाने। इस पावन चरितमें जो प्रसंग वर्णित हैं, वे सभी पूर्व-कथित ग्यारह पुस्तकोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। पूर्व-प्रकाशित उन सभी प्रसंगोंमेंसे कुछ मुख्य-मुख्य प्रसंग वर्षानुवर्ष-क्रमको ध्यानमें रखते हुए इस पुस्तकमें संग्रथित किये गये हैं। विस्तृत जानकारीके लिये वे सभी ग्रन्थ अवलोकनीय हैं। परम पूज्य बाबाका यह पावन चरित भक्त-जनोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए परम प्रसन्नताकी अनुभूति हो रही है।

इस संकलनके सम्बन्धमें एक स्पष्टीकरण करना आवश्यक लग रहा है। पुस्तकमें 'बाबूजी' शब्दका प्रयोग परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्‌दार एवं 'बाबा' शब्दका प्रयोग परम पूज्य श्रीराधा बाबाके लिये किया गया है।

सावधानीके बाद भी भूल हो जाना स्वाभाविक है। इस संकलनमें जो भूल या प्रमाद हो गया हो, उसके लिये विनम्र क्षमा-याचना है। निज जनों द्वारा बतलाये जानेपर भविष्यमें भूलको सुधारनेका अवसर मिलेगा।

विनीत
योगेन्द्रनाथ बंका

।। श्रीहरिः ।।

प्रकाशक की ओर से

(द्वितीय संस्करणके सम्बन्धमें निवेदन)

यह प्रसन्नताकी बात है कि समाजने इस पुस्तकका समादर किया। समय समयपर पाठकोंके पत्र आते रहे, जिसमें पुस्तककी सराहना की अभिव्यक्ति थी। एक वर्षके अन्दर ही प्रथम संस्करण समाप्तिकी सीमापर आ गया, अतः दूसरा संस्करण छपवाना पड़ा।

अनेक स्वजनोंका स्नेहपूर्ण आग्रह था कि पूज्य बाबासे सम्बन्धित अनेक प्रसंग इस पुस्तकमें नहीं आये हैं। उस आग्रहको सम्मान देनेके लिये कई प्रसंग सम्मिलित कर लिये गये हैं। परिशिष्टके रूपमें पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीका भी जीवन वृत्त इस पुस्तकके अन्तमें प्रकाशित है।

पहले संस्करणमें शीघ्रताके कारण अनेक भूलें रह गयी थी। उन भूलोंको दूर करनेके लिये भरपूर प्रयास रहा है। इसके बाद भी कोई भूल रह गयी हो तो उसके लिये क्षमा याचना है। जो भी भूल ध्यानमें आये, वह अवश्य बतलायी चाहिये, जिससे भविष्यमें सुधार हो सके। यह ग्रन्थ सभी पाठकोंको जीवन निमाणकी प्रेरणा प्रदान करे, यही मेरी मंगल कामना है।

विनीत
योगेन्द्रनाथ बंका

लीला-सिन्धु में संतरण

संतसमागम : पूज्य श्रीपण्डितजी, श्रीभाईजी एवं श्रीराधाबाबा

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)

सन् १९५६ की श्रीराधाष्टमी

बाबाने अन्तिम रात्रि-जागरण और अन्तिम उद्दाम नाम-संकीर्तन सन् १९५६ की श्रीराधाष्टमीको किया था। सन् १९५६ की शरद पूर्णिमाको बाबाने काष्ठ-मौन-व्रत लिया। शरद पूर्णिमाके पहले जो श्रीराधाष्टमी पड़ी, उसी श्रीराधाष्टमीकी बात है। इस साल भाद्र मासमें घनघोर वर्षा हुई। इतनी अधिक वर्षा हुई कि कुएँके मुँहतक पानी भर आया। रस्सीकी आवश्यकता नहीं, हाथ डालकर लोटेमें पानी भर लो, ऐसी घनी वर्षा हुई। स्नानके बाद भीगे कपड़ोंको सुखाना बड़ा कठिन हो गया था, परंतु जितनी घनी वर्षा, उतना ही घना आनन्द। जैसे आकाशमें बादल घुमड़ रहे थे, वैसे ही, बल्कि उससे भी अधिक उत्सवमें आनन्द उमड़ रहा था। श्रीराधा-जन्मके बाद 'राधा' नामका उद्दाम संकीर्तन हुआ। बाबा घंटा बजा रहे थे। वे लगातार दो-अढ़ाई घंटेतक बजाते रहे। सबलोग बाबाके स्वरसे स्वर मिलाकर बोल रहे थे और तालसे ताल मिलाकर वाद्य बजा रहे थे। कहीं भी तनिक-सी विस्वरता नहीं, धक्का-मुक्की नहीं और उद्दामताके नामपर उच्छृंखलता नहीं। उस संकीर्तनमें बड़ा सुख मिला।

बाबाने रात्रि-जागरण भी किया। रात्रि-जागरणमें ठाकुर श्रीघनश्यामजी तथा अन्य पाँच-छः व्यक्ति ही रहे होंगे। रातके बारह बजेतक तो उत्सव चलता रहा। बारह बजेके बाद रात्रि-जागरणके निमित्तसे कुछ लोग बाबाके पास बैठ गये। बाबाने पदकी एक पंक्ति गायी। वह स्वरचित पंक्ति थी —

कालिन्दी ! धीरे बहो, मेरे प्रियतम उतरेंगे पार।

कृष्णप्रिया श्रीराधारानीका कालिन्दी-तटकी ओर अग्रसर होना, तटकी सारी भूमिका दूर्वादलसे आच्छादित रहना, दूर्वादलपर पद-कमल रखते हुए प्रीति-भरिता श्रीराधाजीका अभिगमन करना, पद-कमलके स्पर्शकी प्राप्तिसे

दूर्वादलका अत्यधिक आह्लादित होना, कालिन्दीकी निर्मल धाराका बहना, श्यामल धारासे श्रीराधाजीका अनुरोध करना, इन सबके वर्णनमें समयका ज्ञान रहा ही नहीं। आधे लेटे-लेटे हुए बाबा यह सब सुना रहे थे और सबलोग विभोर चित्तसे सुन रहे थे। वर्णनके कहने-सुननेमें कब चार घंटे बीत गये और कब प्रातः कालके चार बज गये, कुछ पता ही नहीं चला।

* * * * *

काष्ठ मौन व्रत

जिन दिनों बाबाने बाबूजीके संकेतपर प्रवचन देना बन्द करके साधारण मौन व्रत लिया था, उन दिनों बाबा श्रीमञ्जुलीला मञ्जरी-भावसे भावित हुए श्रीराधा-माधवकी रसमयी लीलाओंके चिन्तनमें लीन रहा करते थे। श्रीमञ्जुलीला- भावमें विरहकी प्रधानता है। मौनव्रतने और अधिक अनुकूल परिस्थितिका निर्माण कर दिया। लीला-चिन्तनकी तल्लीनतामें प्रगाढ़ता आने लगी। बाबा श्रीमञ्जुलीला-भावमें लगभग चार वर्ष रहे और तदुपरान्त उनकी प्रतिष्ठा श्रीमञ्जुश्यामा-भावमें हो गयी। उत्तरोत्तर रसावगाहन गहन होने लग गया। इसी अवधिमें व्रजेन्द्रनन्दन भगवान श्रीकृष्णने भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजीकी उपासना करनेका निर्देश दिया। भगवान श्रीकृष्णने उपासनाकी विधि नहीं बतलायी थी, परंतु उनकी प्रेरणासे उपासना-विधि बाबाके मनमें स्फुरित हुई। उपासनामें लवलीन बाबाको पूर्ण सफलता मिली और सन् १९५१ की अक्षयतीजके दिन भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजीने दर्शन देकर निज मन्त्रका दान दिया।

यह शक्ति-अर्चना भावी महाभावमय जीवनकी आधार-स्वरूपा पृष्ठभूमि थी। बाबाको भला क्या पता था कि मेरी भावी स्थिति क्या होनेवाली है, परंतु उस दिव्य स्थितिकी ओर सर्व-संचालक एवं समर्थ सूत्रधार भगवान श्रीकृष्ण क्रमशः उन्हें अग्रसर कर रहे थे। बाबा भाव-सिन्धुमें गहरे-से-गहरे उतरते चले जा रहे थे। बाबाके जीवनमें भाव-सिन्धु अधिकाधिक उच्छलित होने लगा। लोकालय सुहाता नहीं था। जगतकी स्मृति भी चुभती थी। जगतकी स्मृतिकी बात तो अलग रही, शरीरकी स्मृति भी विक्षेपवत् लगती थी। रस-सिन्धुमें सतत निमज्जन करना बाबाके लिये एक स्वाभाविक स्थिति थी। सतत निमज्जनमें बाधक स्वरूप लगनेवाली मम-परकी स्मृतिका अस्तित्व ही क्यों रहे, अतः

अबाध-अगाध रसावगाहनके लिये बाबाने काष्ठ मौनका निर्णय ले लिया। काष्ठ मौन व्रतका निर्णय लेनेके पीछे भी वही ईश्वरीय योजना परोक्ष रूपसे सक्रिय थी, जिसने बहुत पहले प्रवचन देनेकी प्रवृत्तिसे निवृत्ति दिलाकर वाणीका मौन व्रत ग्रहण करनेके लिये उपयुक्त परिस्थितिका निर्माण कर दिया था। काष्ठ मौन व्रतका ग्रहण करना बाबाके लिये साधनावस्थाका कोई सोपान नहीं था। यह यदि लक्ष्यतक पहुँचाने वाले कतिपय सोपानोंमेंसे एक सोपान होता तो शरद पूर्णिमाके दिन काष्ठ मौन व्रत लेते ही बाबा तत्काल शरीरातीत कैसे हो जाते? सतत रसावगाहन तो बाबाके लिये सहज सिद्ध स्थिति थी। उस सातत्यमें कभी-कभी विक्षेपवत् उभरने वाली मम-परकी स्मृतिका बाध करनेके लिये यह काष्ठ मौन व्रत था। काष्ठ मौन व्रत लेते ही बाबाकी जो शरीरातीत स्थिति हो गयी तथा काष्ठ मौन व्रतकी अवधिमें बाबाकी जैसी गम्भीर स्थिति रही, उसे देखकर स्पष्ट लगता है कि काष्ठ मौन व्रतको ग्रहण करनेके पीछे भगवान श्रीकृष्णकी प्रेरणाका ही विलास है।

बाबाने काष्ठ मौन व्रतके निर्णयकी सूचना बाबूजीको सन् १९५५ के आरम्भमें दे दी थी। निर्णयकी जानकारी होते ही बाबूजीने इसका प्रसन्न चित्तसे अनुमोदन किया। काष्ठ मौन व्रत लेनेके सम्बन्धमें बाबाने बाबूजीसे कोई परामर्श अथवा विचार-विनिमय नहीं किया, यह तथ्य भी स्वयंमें एक प्रमाण है कि इस कठोर और महान व्रतका प्रेरक तत्त्व अवश्य ही भगवदीय संकेत है। यदि इसके पीछे भगवदीय संकेत नहीं होता तो ऐसा महत्त्वपूर्ण निर्णय लेनेके पूर्व पूर्णानुगत बाबा बाबूजीसे परामर्श करते। बाबाने यह भी बतला दिया कि इस व्रतके लेनेके लिये १९ अक्टूबर १९५६ की शारदीय पूर्णिमाका दिवस निश्चित हुआ है।

काष्ठ मौनका स्पष्टीकरण करते हुए बाबाने बताया था कि इसका अर्थ केवल वाणीका मौन नहीं होता, अपितु जगतकी और शरीरकी सारी क्रियाओंसे सर्वथा अपनेको हटा लेना, सबसे मौन हो जाना। बाबा द्वारा किये गये इस स्पष्टीकरणमें काष्ठ मौनके केवल बाह्य लक्षणोंकी ओर संकेत किया गया है। बाबाके काष्ठ मौनके वास्तविक स्वरूपका विवेचन करते हुए बाबूजीने सन् १९६७ के अप्रैल मासमें प्रवचन देते हुए कहा था – रस-सिद्ध पुरुषके जीवनमें एक प्रकारके ऐसे रसका आविर्भाव होता है, जो आगे जाकर समुद्र बन जाता है। रसके उस महासमुद्रमें अनन्त तरंगें उठती हैं और वह उन तरंगोंमें लहराता रहता है। कभी वह उस समुद्रके तटपर आता है तो बाहर दिखलायी देता है, अन्यथा वह उन्हीं तरंगोंमें रहता है। उत्तरोत्तर वर्धनशील रसावगाहनका

परमोत्कृष्ट स्वरूप ही यह काष्ठ मौन है।

यह भी ईश्वर-प्रेरित एक संयोग था कि सन् १९५६ के आरम्भमें तीर्थ-यात्रा ट्रेन चलनेसे तीन धामकी यात्रा भी काष्ठमौन व्रत स्वीकार करनेसे पूर्व सम्पन्न हो गयी। तीर्थ-यात्रासे लौटकर आनेके बाद बाबूजी बहुत अस्वस्थ हो गये। सुदीर्घ यात्राके श्रमका यह स्वाभाविक परिणाम था, परंतु उस अस्वस्थावस्थामें खूब एकान्त मिला और खूब अवसर मिला प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी लीलामें निमज्जनका। क्रमशः बाबाके काष्ठमौनकी तिथि समीप आने लगी और गीतावाटिकामें स्वजनोंकी भीड़ बढ़ने लग गयी। देशके कोने-कोनेसे तथा दूर-दूरसे प्रतिदिन कोई-न-कोई आता ही रहता था। जिसका बाबासे थोड़ा-सा भी लगाव था, वह सुनते ही गीतावाटिकाके लिये चल पड़ता था। पता नहीं बाबा फिर बोलेंगे या नहीं, अतः दर्शन करनेके लिये तथा साधना सम्बन्धी निर्देश प्राप्त करनेके लिये लोग गीतावाटिका चले आ रहे थे।

जो भी मिलनेके लिये आया, बाबाने उन सभीसे बात की। प्रत्येक व्यक्तिको कम-से-कम पन्द्रह-बीस मिनटका समय तो बातचीत करनेके लिये मिलता ही था। सभीको बाबा साधनात्मक जीवन अंगीकार करनेके लिये प्रेरणा दिया करते थे। बाबासे जो और जैसी बातचीत होती थी, उसकी झलक प्राप्त करनेके लिये एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। बाबाको काष्ठ मौन लेना था १९ अक्टूबरको और १७ अक्टूबरको बाबाने डा. श्रीघनश्यामजी तोलानीको बातचीतके लिये समय दिया। डा. तोलानी नासिकसे आये थे। आपने तीर्थ-यात्रा ट्रेनमें सेवा-भावसे चिकित्सा-कार्य किया था। डा. तोलानीकी निष्काम सेवा तथा भक्ति-भावनासे बाबूजी बहुत अधिक प्रभावित और प्रसन्न थे। डा. तोलानीको बुलाकर बाबाने कहा – मेरी एक बात आप याद रखियेगा। श्रीपोद्दार महाराजका आपपर बहुत प्रगाढ़ स्नेह है। श्रीभाईजीका यह स्नेह आपके जीवनकी एक बहुत बड़ी निधि है।

डा. तोलानीने कहा – बाबा! श्रीभाईजी जैसे महान संतका मुझ दीन-हीनपर स्नेह होना बहुत बड़े सौभाग्यकी बात है। श्रीभाईजी नाम जपपर बहुत बल देते हैं, पर नाममें मेरा मन नहीं लगता।

बाबाने कहा – नाम और नामीमें भेद नहीं है। भगवन्नाम भगवत्स्वरूप है और भगवन्नामकी कृपासे नाममें मन लगेगा। साधना करते समय साधकके जीवनमें चढ़ाव-उतार आता ही है। प्रतिकूलतामें न घबराना चाहिये और न निराश होना चाहिये। अन्तमें आपको भगवान अवश्य मिलेंगे, यह विश्वास

रखिये। मैं आपको ठग नहीं रहा हूँ, एक यथार्थ सत्य कह रहा हूँ।

इस आश्वासनसे विभोर डा. तोलानीने कहा – बस, आपकी कृपा बनी रहे।

तुरंत बाबाने कहा – मेरी कृपा! मेरी कृपा कितनी है और कैसी है, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। अन्त तक आप मुझसे जुड़े रहेंगे।

हृदयमें अमित उर्मिलता एवं नेत्रोंमें विकल सजलता लिये-लिये डा. तोलानीने बाबाको प्रणाम किया और चले आये।

डाक्टर ए. सी. साहासे मिलनेका प्रसंग तो और भी अद्‌भुत है। डाक्टर साहा पड़रौना नगरमें होमियोपैथिक चिकित्साका कार्य करते थे। वे तथा उनके मित्र श्रीहरिद्वारमलजी टीबड़ेवाल बाबासे मिलनेके लिये पड़रौनासे गीतावाटिका आये। बाबाने चतुर्दशी वाले दिन प्रातःकाल बात करनेके लिये उनको एक घंटेका समय दिया। इससे इन दोनों सज्जनोंको अतीव प्रसन्नता हुई। एक-दो दिनकी प्रतीक्षाके बाद चतुर्दशीका प्रातःकाल आ गया। ये दोनों लोग बहुत ही उत्सुक थे कि अब बात होगी। प्रातःकालसे अपराह्न काल हो गया, पर अनचाहा संयोग ऐसा बना कि इन लोगोंको बात करनेके लिये समय नहीं मिल पाया। इन लोगोंके मनमें बड़ी बेकली थी कि काष्ठ मौन व्रत लेनेसे पूर्व क्या बाबासे बात नहीं हो पायेगी ?

बाबाने कोठीके अन्दर पूजाघरके सामनेवाले बरामदेमें भिक्षा की। भिक्षा करके बाबा कोठीसे बाहर निकले। निकलते ही उन दोनोंने बाबासे कहा – सबेरेसे हमलोग प्रतीक्षामें बैठे हैं कि आप अब बात करेंगे, आप अब बात करेंगे, परंतु प्रतीक्षा करते-करते सुबहसे तीसरा पहर हो गया।

बाबाने कहा – मैंने आपको समय दिया है। मैं तो आपसे बात कर चुका।

उन दोनोंको बड़ा विस्मय हुआ कि बाबा क्या कह रहे हैं। उन लोगोंने निवेदन किया – स्वामीजी! हमलोगोंको समय नहीं मिला है। हमलोग तो सबेरेसे राह देख रहे हैं कि कब अवसर मिलेगा।

बाबाने पुनः कहा – पर मैं तो आपलोगोंको समय दे चुका।

उन लोगोंने यह समझा कि शायद बाबाको भ्रम हो गया है, अतः स्पष्टीकरणके लिये कहा – आपने हम लोगोंको एक घंटाका समय दिया था, पर अभी तक सचमुच हमदोनोंसे आपने बात नहीं की है।

बाबाने पुनः कहा – मैं भी सचमुच सत्य कह रहा हूँ कि मैंने आपको एक घंटा नहीं, दो घंटेका समय दिया है, इतना अधिक समय दिया है कि आप अनुमान नहीं कर सकते।

अब वे दोनों लोग क्या बोलें? चुपचाप निराश-विजड़ित बाबाके सामने खड़े थे। डा. साहा तथा श्रीहरिद्वारमलजीकी आँखोंमें खिन्नता एवं व्यथा नाच रही थी। अब वस्तुस्थितिको स्पष्ट करते हुए बाबाने कहा – मैंने प्रातःकाल आप दोनोंको स्मरण किया। भगवान श्रीकृष्णसे जुड़े हुए मनसे मैंने आप दोनोंको स्मरण किया। भगवान श्रीकृष्णके यहाँका एक क्षण क्या इस संसारके एक क्षणके बराबर होता है? भगवदीय एक क्षणकी अवधिकी तुलनामें जगतका कालमान आ ही नहीं सकता। भगवानसे जुड़े हुए मनसे जब मैंने आप दोनोंको स्मरण किया, उस समय जो वस्तु आपको मिली होगी, उसकी कल्पना भी आप नहीं कर सकते।

इतना सुनते ही वे दोनों लोग बहुत अधिक द्रवित हो उठे। सजल नयन और विभोर वाणीमें उन्होंने इतना ही कहा – हम सीमित दृष्टिवाले साधारण प्राणी इन गूढ़ बातोंको भला क्या समझ सकते हैं? हम व्यर्थ ही अन्यथा चिन्तन कर रहे थे। हम आये थे साधना-सम्बन्धी कतिपय छोटे-छोटे प्रश्नोंका समाधान प्राप्त करनेके लिये, परंतु आपने तो साध्य-राज्यकी वह वस्तु प्रदान कर दी, जो उन समाधानोंसे भी नितान्त परेकी है। हमें ऐसा महान आश्वासन और विश्वास प्राप्त हुआ है, जो कठोर साधना द्वारा भी अप्राप्य है। स्नेह परवश होकर आपने जो किया, उसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते थे। आपके प्यारसे रोम-रोम पुलकित है।

इतना कहकर डा. साहाने तथा श्रीहरिद्वारमलजीने बाबाको प्रणाम किया। काष्ठमौनके अवसर पर जितने लोग भी बाहरसे गीतावाटिका आये थे और जो लोग गोरखपुर नगरके थे, सबका ही बाबाने इस या उस विधिसे भरपूर समाधान किया।

काष्ठ मौन व्रत लेनेके पूर्व बाबाने अपनी अनेक अर्चनाएँ विसर्जित भी कर दी। उन सबका पूर्ण विवरण तो प्राप्त नहीं है। संकेतके रूपमें एक-दो बातें बतलायी जा सकती हैं। बाबा प्रतिदिन 'व्रजरजवटी' का सेवन किया करते थे, इसका निर्वाह सम्भव नहीं था, अतः बाबाने भगवानके श्रीचरणोंमें इस नियमको समर्पित कर दिया। इसी प्रकार अपने पूजा-पाठकी अनेक वस्तुएँ यथायोग्य व्यक्तियोंके मध्य वितरित कर दी, जैसे श्रीललिता

सहस्रनाम स्तोत्रकी पुस्तिका बाबाने श्रीकृष्णजीको प्रदान कर दी। गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीको भी कोई अर्चना प्रदान की थी।

क्रमशः काष्ठ मौन व्रत ग्रहण करनेकी वेला समीप आती चली जा रही थी। बाबासे अब भविष्यमें संभाषण-सम्मिलन नहीं हो पायेगा, इसकी कल्पना मात्रसे सभीकी भावनाएँ अति संत्रस्त हो रही थीं। साधन-भजनमें ज्यों ही थोड़ी शिथिलता आती थी तो लोग दौड़कर बाबाके पास चले आते थे और बाबासे थोड़ी देर बातचीत करनेका परिणाम यह होता था कि अवसादकी सारी बदली छँट जाती थी, तन-मनमें पूर्ण उत्साह भर जाया करता था और साधन-पथके सारे कंटक फूलमें बदल जाया करते थे। अब मनमें प्रश्न था कि वह उत्साह और वह प्रेरणा कहाँसे प्राप्त हो पायेगी, इस अभावकी अनुभूतिसे भावनाओंकी विकलता और भी अधिक बढ़ती चली जा रही थी। वे जन परम सौभाग्यशाली थे, जिन्हें बाबाके समीप बैठनेका उन्मुक्त अवसर मिला करता था और जिन्हें बाबाकी संनिधिमें समयका परिज्ञान भी नहीं हो पाता था, आज उन सबका हृदय भीतर-ही-भीतर चीत्कार कर रहा था अपने महान सौभाग्यका अन्त देखकर। बाबाके वे मुस्कुराते हुए अधर, वे प्यार-भरी आँखें, वे प्रेरणा भरी बातें अब देखने-सुननेको नहीं मिलेंगी, इसके अनुमान मात्रसे सभी आश्रित-जनोंके अन्तरमें हाहाकार मचा हुआ था, पर यह व्यथा किससे कहें और क्या कहें? सभी तो इस दारुण व्यथासे ग्रस्त थे। यह तो सर्वथा सत्य है कि बाबा एक ऐसा असि-धारा-व्रत स्वीकार करने जा रहे हैं, जिससे भक्ति-भावना भी महिमान्वित हो उठे और ऐसे महान बाबा हमारे अपने-से-अपने हैं, इसकी स्मृति और स्फूर्ति मात्रसे हृदय परमानन्दपूर्ण गौरव-भावसे भावित हो उठता था, परंतु इस समय उस गौरव-भावको आच्छादित किये हुए थी एक अदम्य टीस, एक ऐसी कसक, जिसका कोई निराकरण अथवा निवारण नहीं था। नहीं चाहते हुए भी परम प्राण-धन अपने परम श्रद्धास्पद बाबाको 'विदाई' देनेके लिये सभी लोग पंडालमें इकट्ठे होने लग गये। अब मध्य रात्रिकी वेलामें एक-दो घंटे और शेष रह गये थे।

जहाँ पहले पंडालमें श्रीराधाष्टमी-महोत्सव मनाया जाता था, वहींपर बाबाने मध्य रात्रिके समय मौन व्रत लिया था। रात्रिको दस बजे ही सभी भक्तगण पंडालमें आकर बैठने लग गये। गीताप्रेसके लोग तथा शहरके कई

लोग भी उस समय आ गये। पंडालमें आनेसे पहले बाबा एवं बाबूजीकी कुछ बात एकान्तमें थोड़ी देर हुई। इसके बाद बाबूजी बाबाको साथ लेकर लगभग ग्यारह बजे पंडालमें आये। चौकी लगाकर मंच बनाया गया था, उसपर बाबा और बाबूजी विराजित हो गये। सभी उपस्थित लोगोंका हृदय अपार व्यथासे भरा हुआ था। 'विदा' होनेवाले बाबापर सबकी दृष्टि टिकी हुई थी। टिकी नहीं, सबकी दृष्टि गड़ी हुई थी। सभी संन्यासी वेषमें विराजित बाबाको एकटक निहार रहे थे। लोग रह-रह करके देख लेते थे बाबूजीकी ओर भी उनके मुखमण्डलपर उभरती-मिटती हुई भाव-रेखाओंका अर्थ लगानेके लिये, किन्तु इस समय सभीके आकर्षणके केन्द्र-बिन्दु बने हुए थे बाबूजीके पार्श्वमें सुशोभित बाबा। संन्यासी वेषके मध्य बाबाकी सुदीप्त गौर कान्तिको लोग आँखोंसे पी जाना चाहते थे।

उस विदाईके अवसरपर सभी लोगोंके समक्ष बाबाने जो निवेदन किया, उसकी मुख्य-मुख्य बातें सार रूपमें इस प्रकार हैं। सब लोगोंसे बाबाने कहा –

जीवनमें कोई विरला अभागा प्राणी ही मरते समय झूठ बोलता है। मेरा अनुभव है, वे किसी विवशता या दबावसे ऐसा करते हैं। मैं मरने जा रहा हूँ।

'जो कुछ लिखि राखी नँदनंदन मेटि सकै ना कोय।'

वनमें घूमता भौंरा चम्पापर नहीं बैठता है। क्या उसमें सौन्दर्य नहीं और क्या इसमें रसकी वासना नहीं? चम्पा खूब सुन्दर है और भौंरा रसका लोभी है, पर ईश्वरेच्छा बलवान है। मैं स्नेहकी वन्दना करने आया हूँ।

काष्ठमौन बड़ी चीज नहीं है, यह संन्यासियोंका आचार है और अवश्य करना चाहिये। संन्यासकी मुझमें कोई वस्तु नहीं है। मनमें लगा कि शेष समयका ऐसा ही उपयोग हो। यह यतियोंका आचार है। काष्ठमौन गंगातटपर ही धारण करनेका नियम है। उत्तम वस्तु तो यह है कि शरीरपातके लिये चल पड़े गंगाके मूल स्रोतकी ओर, गंगाके प्रवाहमें जल पीये, भूखमें कोई पूछे तो हाथ फैला दे। खाने लायक हो तो खा ले, नहीं तो गिरा दे। वस्त्र गिर गया हो तो अपने आप न बाँधे, दूसरा कोई बाँध दे तो बाँध दे।

मेरा काष्ठमौन 'अधूरा' है, क्यों कि मेरी सुख-सुविधाकी सारी व्यवस्था भाईजी कर रहे हैं, भिक्षा यहाँ ले रहा हूँ। भाईजीका मेरे प्रति स्नेह

है। उसका मैं गहराईके साथ निरन्तर अनुभव करता हूँ। मैं भाईजीसे मिलने गया, जाते ही भाईजीकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। भाईजीके सम्बन्धमें अधिक नहीं कहूँगा। वे इसी स्थानपर हम सभीके सामने विराजित हैं।

श्रीपोद्दार महाराज यदि गुलाबके पौधे हैं तो उस पौधेकी एक शाखापर खिलनेवाला मैं एक छोटा-सा गुलाबका फूल हूँ और सदा हँसता रहता हूँ। उस गुलाबमें तो काँटा भी होता है, पर गुलाबका यह पौधा तो कण्टक-रहित है। मुझसे भी अधिक सुन्दरतर और अधिक श्रेष्ठतर पुष्प, एक नहीं, अनेकानेक पाटल पुष्प खिला देनेकी क्षमता इस पौधेमें है।

काष्ठमौनमें न किसीकी ओर नजर उठाकर देखना है, न बोलना है, न पढ़ना है, न संकेत करना या लिखना है। पर काष्ठमौनका अर्थ यह भी है – राधेश्याम (भगतजी) मेरी सेवा करता है, वह कुएँपर पानी भर रहा हो, पैर फिसल गया हो और वह कुएँमें गिर पड़ा हो तो उस समय मैं मौन नहीं रहूँगा, जोरसे चिल्लाऊँगा कि राधेश्याम कुएँमें गिर पड़ा और साथ-ही-साथ उसको बचानेके लिये कुएँमें कूद पड़ूँगा। यदि उसके प्राण बच गये तो ठीक है, नहीं तो मेरा और उसका, दोनोंका जीवन भगवानके चरणोंमें समर्पित हो जायेगा।

आगे चलकर मेरी मानसिक अवस्था क्या होगी, मैं नहीं जानता। बोलनेका प्रश्न भाईजीके साथ हो सकता है। अट्ठारह महीनेके पहले ही यह निर्णय हो गया था कि इस तिथिको, आश्विन पूर्णिमाको मौन हो जाऊँगा। भाईजी इतने बड़े संत –इनको संत ही मानता हूँ –अन्तकाल तक मेरी सँभाल करेंगे। जिस समय भाईजीको किसी प्रश्नको लेकर परेशानीका अनुभव हो, उस समय बोलकर प्रकाश डाल देना चाहिये, मेरी इतनी-सी चेष्टा हो सकती है। सावित्रीकी माँने पुत्रकी तरह मुझे भिक्षा करायी है। जब भिक्षाके लिये जाऊँ तो उनकी ओर देखूँगा। देखनेका प्रश्न केवल भाईजी और माँजीके लिये है।

जो मंगलमयता चिताकी ज्वालामें है, वही प्रसूतिगृहके मंगलप्रदीपमें है। मृत्यु और जीवन भगवानके राज्यके दो परदे हैं। यदि भाईजीका शरीरान्त हो रहा हो या उनका शरीर शान्त हो गया हो तो सूचना पाते ही आऊँगा। भक्तका हृदय करुणासे भरा होता है। जब मैं अभी मिलने गया तो श्रीभाईजी जोर-जोरसे रोने लगे।

विश्वातीत भगवानकी उपासना कीजिये। मेरी राधा विलक्षण है। वास्तवमें जिसके मनमें तनिक-सा भी काम विकार है, वे हमारी राधाकी उपासनाके अधिकारी नहीं हैं, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री हों।

अब आप लोग जो हमें प्यार दे रहे हैं, वह राधाकिशोरी ही इतने रूपोंमें झाँक रही है। अपनी जानमें भगवानको एक क्षण भी भूलिये मत। भगवान थे, हैं और रहेंगे। देखनेके लिये शुद्ध आँख चाहिये।

हे राधाकिशोरी! हे कृष्ण! आशीर्वाद चाहता हूँ—

देहु दया करि दान न भूलौं केलि को।
भगवत वलित तमाल बिलोकों बेलि को।।
नरक स्वर्ग अपवर्ग आस नहिं त्रास है।
जहँ राखौं तहँ रहौं मानि सुख रास है।।
दुख सुख भुगते देह, नहीं कछु संक है।
निंदा अस्तुति करौ राव क्या रंक है।।
परमारथ व्यवहार, बनौ कै ना बनौ।
अंजन ह्वै मम नयन 'रसिक भगवत' सनौं।।

बस, राधाकृष्णको ही निरन्तर देखता रहूँ। अंजनके समान वे दोनों नयनमें विराजित रहें।

बाबाके बोल चुकनेके बाद बाबूजीने बोलना आरम्भ किया। बाबूजीने कहा — स्वामीजीका काष्ठमौन होने जा रहा है। इनके साथ जिनका बाह्य सम्बन्ध था, वह लोकमें टूट रहा है। इसका मुझको भी दुःख हुआ है, पर परमार्थका सम्बन्ध तो अटूट है।

असली सम्पर्क तो श्रीराधारानीको लेकर है, वह सम्पर्क कभी नहीं टूट सकता, सदा बना रहेगा। डरनेकी बात नहीं है। मेरा इनका क्या सम्बन्ध है, सो तो भगवान ही जानते हैं, मैं नहीं जानता, ये भी शायद नहीं जानते हैं।

मैं इनका यतिरूप इतना ऊँचा देखना चाहता हूँ कि वह औरोंके लिये इस समयके जगतमें आदर्श हो। इन्हें आदर्श यतिधर्मके निर्वाहकके रूपमें देखनेकी मेरी उत्सुकता है। मैंने मौनकी बात जाननेपर बाह्य रूपसे सम्मति नहीं दी, पर मानसिक रूपसे समर्थन किया।

इनका जीवन राधारानीमय हो। इनके जीवनकी धारा संसारको

विशुद्ध प्रेम-सुधा-रससे प्लावित कर दे। भविष्यकी बातका पता नहीं है, पर यदि इनमें दिव्य उन्माद-विक्षिप्तता आये, जो चैतन्य महाप्रभुके अन्तिम जीवनमें देखी गयी थी उनकी गम्भीरा लीलामें, तो मैं उसका हृदयसे स्वागत करता हूँ। रसकी धारा.....।

बाबूजी बोल ही रहे थे कि घड़ीने बारह बजाया और बाबाने तत्काल कहा – मैं यहीं मौन लेता हूँ।

इतना कहकर बाबा मंचपर ही खड़े हो गये। खड़े होकर बाबाने दो या तीन बार 'राधा' 'राधा' 'राधा' कहा और फिर तुरन्त ही नितान्त अन्तर्मुख हो गये। बाबूजीने ही सबको सूचना दी कि बाबा मौन हो गये हैं। ज्यों ही बाबूजीने सूचना दी, उसी समय कई व्यक्ति वस्तुतः बिलख-बिलख करके रोने लग गये। कई व्यक्तियोंने अपने रोदनके स्वरको अधरोंके कपाटके पीछे जकड़ रखा था। कुछको यह रंच मात्र भी अभीष्ट नहीं था कि मनका मर्म नेत्र व्यक्त कर दें, परंतु यह उनके बसकी बात थी नहीं और वे बार-बार अपनी धोती या साड़ीसे अपनी आँखोंको रह-रह करके पोंछ रहे थे। किसीको मीराबाईकी पंक्ति याद आ रही थी –

जो मैं ऐसो जानती प्रीति करै दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती प्रीत करो जनि कोय।।

एक बहिन तो व्यथासे इतनी अधिक प्रपीड़ित हुई कि तीन दिनतक लगातार उसकी विक्षिप्तावस्था बनी रही। सारे पंडालमें एक अति गम्भीर सन्नाटा छा गया, अपितु यह कहना चाहिये कि उस सन्नाटेने सारी गीतावाटिकाको आवेष्टित करके व्यक्ति-व्यक्तिके उल्लासको कुण्ठित कर दिया था। विजड़ित अधर, विरमित मति और विचलित हृदयसे सभीने अपने विगलित नेत्रों द्वारा देखा कि बाबूजीने बाबाको बड़े धीरेसे मंचपरसे नीचे उतारा और बाबूजी बाबाके गलेमें बाँह डालकर चलने लगे। चलते समय बाबाके शरीरसे उनकी गैरिक चादर भूमिपर गिर पड़ी। बाबा अपने शरीरसे उसी समय इतने अतीत हो गये थे कि चादर कब सरकी और कब गिरी, इसका भान ही नहीं रहा। जिस भक्तने वह चादर उठा ली, उसने उस चादरको अपने पूजा गृहमें पधरा दी। यह चादर तो उसके जीवनकी एक निधि हो गयी।

बाबूजीने बाबाको कुटियातक पहुँचाया तथा निजी परिकर

श्रीराधेश्याम भगत एवं श्रीरामसनेहीको कुछ आवश्यक निर्देश देकर अपने कमरेमें चले आये। सभी भक्तगण भी अपने-अपने विश्राम-स्थानपर चले आये, परंतु थे सभी नितान्त अवसन्न एवं अत्यधिक व्यथित।

* * * * *

अन्तर्मुखी जीवनकी झलक

बाबाने सं.२०१३ वि. की शरद पूर्णिमा, तदनुसार १९-१०-५६ को काष्ठ मौन लिया था। बाबाके मौन लेते ही गीतावाटिकाके वातावरणने मानो गम्भीर रूपसे मौन ले लिया हो। काष्ठ मौनके अवसरपर बाहरसे आये हुए सभी आत्मीयजन हृदयमें भावगाम्भीर्यको लिये-लिये अपने-अपने स्थानको वापस चले गये। पूज्य बाबूजीने २७-१०-५६ को अपने पत्रमें एक स्वजनको लिखा था – यहाँसे प्रायः सभी लोग चले गये हैं। ..... बगीचेमें सन्नाटा-सा छाया है।

इन दिनों बाबूजीका शरीर भी अस्वस्थ चल रहा था। वे तीन धामकी तीर्थयात्रासे अप्रैल ५६ में लौटकर आये थे, तभीसे अस्वस्थताने उनका पीछा नहीं छोड़ा। उनके बाँये हाथमें दर्द तथा शरीरमें हलका-हलका ज्वर सदा बना रहता था। शिथिलता और शक्तिहीनता भी कम नहीं थी। चिकित्सासे कुछ लाभ होता था, पर वह लाभ पुनः छिप जाया करता था। सदा ज्वरका बना रहना तो अच्छी बात नहीं। अब तो डाक्टरों-वैद्योंने भी परामर्श दिया कि उन्हें पूर्ण विश्राम करना चाहिये। इस परामर्शके अनुसार बाबूजीने स्वयंको एक कमरेके एकान्तमें सीमित कर लिया। यह एकान्त तो बाबूजीके लिये अत्यधिक अनुकूल ही सिद्ध हुआ, जिससे श्रीप्रिया-प्रियतमकी अन्तरंग लीलाओंका दर्शन करने और उन लीलाओंमें सम्मिलित होनेका सुअवसर मिला। परिवारके लोग कहने लगे कि बाबूजी चाहे कितना ही एकान्तमें रहें, किन्तु 'कल्याण' पत्रिकाके कामके अतिरिक्त अन्य कार्य सामने आते ही रहते हैं और इसीसे विश्राम नहीं मिल पाता, अतः हम लोगोंको रतनगढ़ चलना चाहिये, जिससे पर्याप्त विश्राम मिल सके। यह विचार जोर पकड़ने लगा और बाबाके काष्ठ मौन लेनेके एक मास बाद सभी लोग

गोरखपुरसे रतनगढ़ चले गये।

गोरखपुरमें और रतनगढ़में बाबाकी जैसी स्थिति रही, उसका वर्णन बाबूजीने समय-समयपर उन पत्रोंमें कुछ-कुछ किया है, जो उन्होंने अपने आत्मीयजनोंको लिखा है। उन अनेक पत्रोंमें लिखी गयी कतिपय पंक्तियोंका सारांश इस प्रकार है – बाबाका काष्ठ मौन व्रत ठीक चल रहा है। किसीसे बोलना, इशारा करना तथा देखना भी बन्द है। वे किसीकी ओर देखते ही नहीं। बाबा जहाँ रहते हैं, वहाँ कोई भी नहीं जाता है। शामके समय भिक्षा करते हैं। भिक्षाके समय भी चुपचाप रहते हैं। वे कभी कुछ संकेत करते ही नहीं, अतः उनकी सुविधा अथवा असुविधाका कुछ भी पता नहीं चलता। किसी दिन भिक्षामें बहुत कम खाते हैं, तब अनुमान होता है कि आज बाबाका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा। वैसे वे बहुत प्रसन्न एवं शान्त हैं। श्रीमद्भगवद्गीताका यह वाक्य 'निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्' बाबाके जीवनमें चरितार्थ है। किसीसे मानो कोई मोह नहीं, कोई सम्बन्ध नहीं, कोई आवश्यकता नहीं, किसी बातकी कोई चिन्ता नहीं।

ऊपर जो लिखा गया, वह तो सन् १९५६ में लिखे गये पत्रांशोंका सारांश है। सन् १९५७ में बाबूजीने जो पत्र लिखे, उनमें तो बाबाकी और भी गम्भीर स्थितिका चित्रण है। उन पत्रोंकी कुछ पंक्तियोंका सारांश है – बाबा आजकल बाह्य जगतसे और भी उपराम होते चले जा रहे हैं। कई बार भिक्षा या स्नान समयपर नहीं हो पाता। ध्यानस्थ बैठे रह जाते हैं। जाकर जगाया जाता है, तब उठते हैं। उनकी उपराम वृत्ति दिनों-दिन बढ़ रही है। बाह्य ज्ञान कम हो रहा है। घंटों बिना नहाये-खाये बैठे रहते हैं। उठानेपर उठते हैं।

इन्हीं तथ्योंकी आवृत्ति भिन्न-भिन्न प्रकारसे बाबूजीके द्वारा लिखित पत्रोंमें होती रही है। वस्तुतः इन दिनों बाबाकी अन्तर्मुखता दिन-प्रति-दिन गहरी होती चली जा रही थी।

* * *

जन्मदात्री माँ की दिव्य परिणति

अब थोड़ी देरके लिये बिहार प्रदेशके फखरपुर ग्राम चला जाय बाबाकी जन्मदात्री माँके पास। माँके मनमें तीव्र लालसा थी अपने संन्यासी पुत्रको एक बार देख लेनेकी। लालसाकी पूर्तिके लिये एक गुप्त योजना बनायी गयी थी, पर वह सफल नहीं हो सकी। सचमुच, उस योजनाकी असफलतामें ही माँ का वास्तविक हित निहित था। माँके आत्यन्तिक और पारलौकिक हितकी दृष्टिसे बाबाका चिन्तन अपने ही ढंगका था। पाञ्चभौतिक धरातलपर यहाँ कुछ क्षणके लिये मिलन एक सामयिक तात्कालिक क्षणिक लाभ था, पर बाबा सोच रहे थे माँके लिये वह परम पारमार्थिक लाभ, जो जीवनके उस पार चिरन्तन होगा, स्थायी होगा और निरवधि होगा। इतना ही नहीं, एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी होगी कि जीवनके अन्तिम क्षणोंमें माँको मेरे सामीप्यकी अनुभूति भी होगी।

बाबाका चिन्तन पूर्ण रूपसे साकार हुआ। अब जन्मदात्री माँके जीवनके अन्तिम दिन आ गये थे। शरीर अस्वस्थ चल रहा था। मृत्युसे दो दिन पहलेकी बात है। एकादशीको माँकी स्थिति गम्भीर हो गयी। घरके लोगोंको ऐसा लगा कि शरीरसे हंस अब उड़ जानेवाला है। माँको खाटसे नीचे उतार लिया गया। ऐसे अवसरपर एकने माँसे पूछा – तुम्हें संन्यासी बाबू याद आते हैं क्या?

माँने बड़े प्रसन्न चित्तसे कहा – देखो, वह रहा। वह मेरे सामने ही तो है। देखो वह रहा।

जब-जब बाबाके बारेमें पूछा गया, तब-तब माँने बाबाकी उपस्थिति बतलायी, कभी पास, कभी दूर, कभी दाहिने, कभी बायें। माँको सतत यही अनुभव हो रहा था कि मेरा संन्यासी बेटा मेरे पास है और यह बात सही भी थी कि उसको बाबा दिखलायी दे रहे थे। वह प्रसन्न-वदना माँ समीप खड़े हुए अपने संन्यासी बेटेसे पूछने लगी – क्यों रे! तू मजे में है न? तुमको भोजन ठीकसे मिल जाता है न?

इस प्रकार वह माँ अपने संन्यासी बेटेसे थोड़ी देरतक बात करती रही, फिर वह अपने आप चुप हो गयी। प्रतिक्षण मृत्यु समीप

आ रही थी। सं.२०१३ वि.पौष शुक्ल द्वादशी (१३-१-५७) को माँने अपने परिवारवालोंसे कहा – मुझे काशी ले चलो।

बाबाके बड़े भाई बड़े मातृभक्त थे, उनकी हर आज्ञाको माननेमें वे तत्पर रहा करते थे। उनकी बड़ी चाह थी कि माँकी अन्तिम अभिलाषाको कैसे पूरा किया जाये। वे बड़े व्यथित थे कि न तो पासमें रेलवे-स्टेशन है और न ग्राममें किसीके पास मोटरकार है। माँकी मृत्युको सन्निकट देखकर वे सोच नहीं पा रहे थे कि क्या किया जाये? निराशाकी स्थितिमें भगवानका स्मरण ही एक मात्र सहारा होता है। वे भगवानका स्मरण मन-ही-मन करने लगे। अगले दिन उन्होंने देखा कि घरके पाससे होकर एक खाली मोटरकार चली जा रही है। पं.श्रीतारा- दत्तजीने दौड़कर ड्राइवरसे पूछा – यह मोटरकार कहाँ जा रही है?

ड्राइवरने बताया – काशी।

उन्होंने कहा – भइया! तुम जितना भी रुपया लोगे, हम देंगे। मेरी माँ मरणासन्न है। उसकी इच्छा काशी जानेकी है। तुम हमलोगोंको काशी पहुँचा दो।

वह ड्राइवर सहमत हो गया। तुरंत मोटर कारमें पीछे गद्दा बिछाया गया। माँके साथ बाबाकी बड़ी बहिन बैठी, जो बाबासे लगभग बीस वर्ष बड़ी थी। पं.श्रीदेवदत्तजी आवश्यक धन लेकर आगे ड्राइवरके बगलमें बैठ गये। इनके अतिरिक्त दो व्यक्ति और भी बैठे। कारमें परिवारके कुल पाँच व्यक्ति माँके साथ काशी गये। किसीको पता नहीं कि वह मोटरकार किसकी थी, वह कहाँसे आ रही थी और कैसे आयी, पर वह आ पहुँची ईश्वरीय विधानसे माँकी अन्तिम चाहको पूर्ण करनेके लिये। ज्यों ही मोटरकारने भगवान विश्वनाथके पावन क्षेत्रमें, पुण्यतोया गंगाजीके पुलको पार करके काशीकी सीमामें प्रवेश किया और चौकपर रुकी, त्यों ही माँने अपने पार्थिव शरीरका परित्याग कर दिया। बाबाकी पूज्या माँका देहान्त सं. २०१३ वि. की मकर संक्रान्तिके शुभ कालमें, तदनुसार पौष शुक्ल १३ सोमवार, १४ जनवरी १९५७ ई. के दिन हुआ। ऐसा लगता है कि वह भगवान सूर्यनारायणके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा कर रही थी। मकर संक्रान्तिके दिन भगवान सूर्यनारायण दक्षिणायणसे उत्तरायणकी ओर हुए और

संक्रान्तिके पावन दिन तीन लोकसे न्यारी काशीके पावन क्षेत्रमें उसने अपने शरीरका परित्याग किया।

अब धर्मशालाके अन्दर जाकर ठहरना था ही नहीं। तुरंत विमान बनाया गया और मणिकर्णिका घाटपर ले जाकर शवको चिताके ऊपर रख दिया गया। ऋषि-मुनियोंकी सन्तान हिन्दूका एक-एक कार्य, उसका जन्म-मरण, उसका जीवन ही यज्ञमय होता है। हिन्दूकी अन्त्येष्टि प्रक्रिया भी एक प्रकारका यज्ञ ही है। वे जन परम भाग्यशाली हैं, जिनका शरीर किसी परम पुनीत तीर्थक्षेत्रमें एवं किसी परम पवित्र पुण्यकालमें परम पावनी भगवती गंगाके किनारे प्रज्वलित चितारूपी यज्ञाग्निमें आहुति बनता है। यह यज्ञ माता-पिता स्वयं नहीं करते, अपितु पुत्रके द्वारा होता है। माता-पिताका आत्म-विस्तार ही तो पुत्र है। पुत्रके रूपमें माता-पिता ही इस यज्ञको सम्पन्न करते हैं। चिताग्निमें शरीरकी अन्तिम आहुतिद्वारा जीवन-यज्ञकी पूर्णाहुति होती है। इस अन्तिम आहुतिको देकर श्रीतारादत्तजी एक किनारे बैठ गये और वे बैठ-बैठे देख रहे थे कि चिताग्निकी ऊँची-ऊँची लपटें शवको आत्मसात करती चली जा रही हैं। अपनी परम पूजनीया माँको भस्मीभूत होते देख करके उनके हृदयमें मातृ-वियोगका भाव उमड़ पड़ा और वे फूट-फूट करके रोने लगे। अपने भाई पं.श्रीदेवदत्तजीसे लिपट करके कहने लगे – क्या भइया! अब मैं टुअर (मातृ-पितृ-विहीन) हो गया? क्या मैं अनाथ हो गया?

उसी समय श्रीदेवदत्तजीने उनसे कहा – अरे तुम रोते हो? ऐसी माँका पुत्र होना कितना बड़ा सौभाग्य है? जिसने मकर संक्रान्तिके पुण्य अवसरपर भगवान विश्वनाथके परम पवित्र काशी क्षेत्रमें अपने शरीरका परित्याग किया, सारे जीवन जो संत-सेवा और पुरजन-सेवा उल्लास एवं उत्साह पूर्वक करती रही, जिसकी पति-सेवाका भाव सदा ही सराहा गया और सबसे बड़ी बात यह कि जिसने चक्रधर जैसे परम सुयोग्य संन्यासी पुत्रको जन्म दिया, वह माँ धन्य, उसका वंश धन्य, उसके दोनों कुल धन्य और उसके समस्त स्वजन धन्य। भगवान करे, ऐसी माँ सबको मिले।

पं.श्रीदेवदत्तजीके इन शब्दोंसे श्रीतारादत्तजीको बड़ी सान्त्वना मिली। चिता आधी ही जल पायी थी कि एक विशेष बात घटित हुई।

आकाशमें बादल तो थे ही, अब वर्षा आरम्भ हो गयी। यद्यपि वर्षा हल्की थी, फिर भी उसे देखकर दोनों भाइयोंको चिन्ता होने लग गयी। आश्चर्यकी बात यह हुई कि वर्षाका चितापर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह पूर्ववत् ही प्रज्वलित रही।

माँके निधनकी सूचना देनेके लिये भाईने बाबाके पास रतनगढ़ तार दिया। बाबाने काष्ठ-मौन १९ अक्टूबर १९५६ को लिया था। इसके सवा माह बाद पूज्य बाबूजी स्वास्थ्य-लाभके लिये गोरखपुरसे रतनगढ़ चले आये। साथमें बाबा भी आये। तार तो बाबाके पास बहुत विलम्बसे पहुँचा, पर तारके पहुँचनेके पहले रतनगढ़में कुछ और ही घटित हो गया। बाबा अपने कमरेमें थे। रातके नौ-दस बजेके आस-पास बाबाकी माँ बाबाके सामने आकर खड़ी हो गयी। बाबाने अपनी माँको पहचान लिया और बाबाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह यहाँ कैसे आ गयी। बाबाने उससे पूछा – तू यहाँ कैसे?

खड़े-खड़े माँ मुस्कुराने लगी। उसके पैर भूमिपर टिके हुए नहीं थे। वह आकाशमें भूमिसे कुछ ऊपर खड़ी थी। यह देखकर बाबाको तुरंत ज्ञात हो गया कि यह तो अपने स्थूल शरीरका परित्याग करके इस समय मेरे सामने सूक्ष्म शरीरसे खड़ी है।

शरीरका परित्याग करनेके बाद बाबाकी माँकी कुछ दिव्य परिणतियाँ हुईं और निधनके तीन दिनके भीतर ही उसे जहाँ पहुँचना था, वह वहाँ पहुँच गयी। बाबाकी माँकी सर्व प्रथम परिणति भगवती पार्वतीके रूपमें हुई। माँने अपने शरीरका परित्याग भगवान विश्वनाथकी दिव्य पुरी काशीकी सीमाके भीतर किया था, सम्भवतः इसी कारण प्रथम परिणति भगवती पार्वतीके रूपमें हुई। इसके बाद दूसरी परिणति महर्षि भागुरिकी धर्मपत्नीके रूपमें हुई। महर्षि शाण्डिल्य तो श्रीनन्दकुलके पुरोहित हैं और महर्षि भागुरि वृषभानुकुलके पुरोहित हैं। बाबाके पिताजीकी परिणति महर्षि भागुरिके रूपमें हुई, अतः उनकी धर्मपत्नीके रूपमें माँकी परिणतिका होना स्वाभाविक है। बाबाकी माँकी अगली परिणति माँ कीर्तिदाके रूपमें हुई। सबसे अन्तिम परिणति हुई सौदामिनीके रूपमें, जो वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके शीशपर विराजित एक विशिष्ट प्रकारकी चन्द्रिका है।

जन्मदात्री माँने निधन होते ही सूक्ष्म शरीरसे रतनगढ़ पधार

करके बाबाको दर्शन दिया। इस दर्शनके तीन दिन बादका प्रसंग है। रतनगढ़में बाबा अपने कमरेमें बैठे हुए थे। कमरेके दोनों द्वार बन्द थे। तभी एक स्त्री बाबाके कमरेमें आयी। उसके शरीरकी कान्ति बड़ी उज्ज्वल थी, उसके अङ्गोंमें दिव्य आभूषण शोभा पा रहे थे। उसके परिधान देखनेमें असाधारण लग रहे थे। कमरेके एकान्तमें एक स्त्रीको अपने सामने अचानक देखकर बाबाको बड़ा अटपटा लगा। बाबा अपने कमरेमें पाटेपर उत्तराभिमुख बैठे हुए थे और यह दिव्य स्त्री पूर्वाभिमुख खड़ी थी। बाबा उसे पहचान नहीं पाये। फिर उस स्त्रीकी ओर बाबा एकटक देखने लग गये। गड़ी दृष्टिसे निहारकर देखनेके बाद बाबा जान पाये कि यह तो मेरी जन्मदात्री माँ है। बाबा तुरंत अपने पाटेपरसे नीचे उतरे तथा भूमिपर मस्तक रखकर माँको प्रणाम किया। बाबाको इस बातसे अतीव प्रसन्नता हो रही थी कि मेरी माँको अपने अन्तिम स्वरूपकी प्राप्ति इतने शीघ्र हो गयी। ज्यों ही बाबाने भूमिपर माथा टिकाकर प्रणाम किया, त्यों ही उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर वरद मुद्रामें आशीर्वाद दिया, उसने हाथ हिलाकर तीन बार आशीर्वाद दिया। बाबाने मन-ही-मन कहा – जा माँ, तू सुखसे रह।

इसके बाद वह अदृश्य हो गयी। वह फिर कभी बाबाको दिखलायी नहीं दी।

* * * * *

महाभाव की दीक्षा

रस-सिन्धुमें संतरणकी दृष्टिसे बाबाके जीवनकी चार घटनाएँ अति महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम है श्रीमञ्जुलीला भावकी दीक्षा, जो गुरुस्वरूपा श्रीरूपमञ्जरीजीने सन् १९३९ में प्रदान की। द्वितीय है श्रीमञ्जुश्यामा भावकी दीक्षा, जो प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णने सन् १९४३ में प्रदान की। तृतीय है गुप्त दैवी मन्त्रकी दीक्षा, जो भगवती श्रीमन्महात्रि- पुरसुन्दरीने सन् १९५१ में प्रदान की और चतुर्थ है श्रीराधाभावकी दीक्षा, जो स्वयं प्रियतम श्रीकृष्णने सन् १९५७ में प्रदान की। सन् १९५६ की शरदपूर्णिमाको बाबाने काष्ठ मौन लिया और वे गम्भीर रूपसे अन्तर्मुख हो

गये, जिसकी एक अति झीनी-सी छवि ऊपर प्रस्तुत की जा चुकी है।

रतनगढ़में सन् १९५७ के चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी बात है। अष्टमी तिथि जानेवाली है और नवमी तिथि आनेवाली है, इन दोनों तिथियोंकी उस सन्धि-वेलामें 'श्रीराधास्वरूप' की महाभावमयी दीक्षा सम्पन्न हुई। बाबा उस 'दिव्य लीला राज्य'में अपने किसी लोकोत्तर दिव्य स्वरूपमें स्थित थे, तभी इस महान सौभाग्यका अवतरण हुआ। बाबाने अपने 'जय जय प्रियतम' काव्यमें स्वयं इस तथ्यको स्वीकार किया है। 'जय जय प्रियतम' काव्यके प्रथम शतकके आरम्भमें प्रथम आठ-नौ छन्दोंमें बाबाने अपने 'भाव-स्वरूप' का परिचय देते हुए लिखा है –

हूँ वही, जिसे कहकर 'मेरे प्राणोंकी रानी' हे प्रियतम।
थे पकड़ लिये वे हाथ, लगी मिंहदी जिनमें थी, हे प्रियतम।।
पर भग्न हुआ-सा था गृह वह जिसमें रहती बाला प्रियतम।
थी तमसे परिपूरित रजनी, जब तुम आये थे हे प्रियतम।।
उस कच्चे घरमें रहकर भी निर्मल थी वह बाला प्रियतम।
था सका नहीं छू उसे एक कण बाहर से आया प्रियतम।।
थी छिपी शक्ति उसमें सहस्र पावक पुञ्जोंकी हे प्रियतम।
सामर्थ्य नहीं थी कहीं किसीमें, जो दूषित कर दे प्रियतम।।

इन पंक्तियोंमें बाबाने अपने दिव्य स्वरूप, अपने दिव्य शृंगार, अपनी दिव्य निर्मलता, अपनी दिव्य शक्तिकी ओर संकेत करते हुए स्पष्ट रूपसे उस परम पवित्र सम्बन्ध और परम प्रिय सम्बोधनका उल्लेख किया है, जब वह महान सौभाग्य चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी-नवमी-तिथिकी संधि-वेलामें अवतरित हुआ था।

एक बार माँके मनमें यह जिज्ञासा जाग्रत हुई कि बाबासे ही उसके वास्तविक स्वरूपके बारेमें प्रश्न किया जाय। एक दिन भिक्षा कराते समय माँने बाबासे पूछा – बताओ! तुम कौन हो?

काष्ठ मौनका व्रत होनेके कारण बाबा कुछ बता नहीं पाये। बाबाने तो माँसे केवल दृष्टि मिलानेकी छूट ले रखी थी। काष्ठ मौनका कठोर व्रत छः वर्षतक चला और इस अवधिमें तीन वर्षतक बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) से भी दृष्टि नहीं मिलायी। ज्यों ही माँने प्रश्न किया, भले बाबाने तत्काल बतलाया नहीं, पर उत्तर तो मनमें उभर ही आया। बाबाने उस

उत्तरको छन्द-बद्ध भी किया। भविष्यमें एक दिन बाबाने उस छन्दको सुनाकर उसका अर्थ बतलाते हुए कहा था – श्रीकृष्णका जो नील कलेवर है, वह मैं हूँ और मेरा जो गौर कलेवर है, वह वे श्रीकृष्ण हैं।

इसी छन्दमें एक पंक्ति आती है, उसका भाव यह है कि मैं श्रीकृष्णके हृदयका एक मधुर स्वप्न हूँ। इसका स्पष्टीकरण करते हुए बाबाने बतलाया था कि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके हृदयका मधुर स्वप्न श्रीराधा है, वह श्रीराधा मैं हूँ। इस पंक्तिका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि श्रीकृष्णका हृदय श्रीराधा है, उस श्रीराधाका मैं एक मधुर स्वप्न हूँ।

* * *

बाबाको जिस महाभावमयी स्थितिकी और जिन विभिन्न अनुभूतियोंकी उपलब्धि हुई, उसको दृष्टिमें रखते हुए उन्होंने अपनी अनोखी पाठशालाका और अनोखी पाठ-प्रक्रियाका वर्णन 'राधा-संदेश' में स्वयं किया है। बाबाका 'राधा-संदेश' शीर्षक हृदयस्पर्शी वर्णन 'चलौ री आज व्रजराज मुख निरखिये' पुस्तकमें प्रकाशित हो चुका है और यह गद्यात्मक वर्णन 'जय जय प्रियतम' काव्यके एकादश शतकका विस्तृत भावानुवाद है। क्रन्दन ही जिनका जीवन है और उस अनादि क्रन्दनका अन्त जिनके जीवनमें कभी आता ही नहीं, वे कृष्णवल्लभा श्रीराधा अपने प्रियतमके प्रिय दूत श्रीउद्धवजीसे कहती हैं –

सुनो! सीखोगे उस कलाको? देखो, मेरे उर-स्थलमें एक पाठशाला है। कब निर्माण हुआ इस पाठशालाका, जानती नहीं। पर मैं उसीमें न जाने कबसे पढ़ रही थी और आज भी उसमें ही पढ़ती हूँ। उस पाठशालाका नाम है – 'प्रेम-पाठशाला'। तो मैं उसीमें पढ़ रही थी, पढ़ रही हूँ उसका प्रथम पाठ है – वर्णमालाका उच्चारण करके उन वर्णोंको लिखना। देखो! पर तुम्हें मैं वर्णमालाका एक ही नाम बताऊँगी। सुनो, 'कृष्ण' – इस वर्णका उच्चारण करते-करते शेष सम्पूर्ण वर्णमालाका तुम्हें भान हो जायगा और फिर तुम उस वर्णमालाकी आकृतियोंको, उनके रंगोंको अपने हृत्तलपर अंकित करते जाना। मैं यही करती हूँ, यही करती थी।

देखो! उस कृष्णवर्णके अन्तरालमें अरुणाभवर्ण बीस नखमणियाँ

दीखेंगी। उनपर वृत्ति केन्द्रित होते ही फिर एक अभिनव नारंगवर्णकी छटा व्यक्त होगी – कहाँ, कैसे, तुम स्वयं समझ लोगे। इसके पश्चात् एक पीतवर्णके दर्शन होंगे। फिर इसके अनन्तर एक हरिद्वर्ण समुद्भासित होगा। लिखते-लिखते श्रान्त कभी मत होना। फिर व्योमवर्ण, नीलवर्ण और वृन्ताकवर्ण – ये सब-के-सब उदित होंगे। अविराम भावसे 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करते रहना और इन वर्णोंकी आकृतिका निर्माण करते रहना। किन्तु सावधान! खड़िया मिट्टीसे नहीं, इसके लिये तुम्हारे अन्तस्तलसे अश्रु की बूँदें निःसृत होंगी। काँचकी भाँति गोल-गोल बूँदें व्यक्त होती रहेंगी और तुम लिखते रहोगे उन वर्णोंको। अक्षरका ज्ञान इतनेमें ही तुम्हें हो जायगा। फिर समझ पाओगे, दिनकरकी रश्मियोंमें इन्हीं वर्णोंकी छायाकी छाया प्रतिभात हो रही है। जब तुम्हें अक्षरका बोध हो जायगा, तब जानते हो, दृश्य-प्रपञ्चकी सत्ता सर्वथा तुम्हारी आँखोंसे विलुप्त हो जायेगी। एक सत्य, एक ज्ञान, एक आनन्द – एकरस सम्पूर्ण सत्य, एकरस सम्पूर्ण ज्ञान, एकरस सम्पूर्ण आनन्दकी बात तुमने कभी सुनी होगी न? उसे तो तुम घलुएमें प्राप्त कर लोगे।

अब आगे सुनो – जिसे अक्षरका बोध हो जाता है, जो वर्णमाला सीख जाती है, वह फिर शब्दोंको लिखती है। जानते हो, एक तो षड्जका शब्द आयेगा, एक ऋषभका, एक गान्धारका, एक मध्यमका, एक पञ्चमका, एक धैवतका और एक निषादका, पर यह शब्द-नामावली उस शब्दकी छायाकी छाया है, भला! उन शब्दोंके लिये भी कोई नाम ही नहीं रे दूत! क्या बताऊँ? पर जैसे, जिस भाँति मैं समझी थी, पाठ पढ़ पायी थी, वैसे ही उसी भाँति तुम समझ सको, इसीलिये ही इतना-सा कह दे रही हूँ। कालके प्रवाहमें कब, कैसे कितना इस प्रक्रियाका आश्रय मैंने स्वयं लिया, जानती नहीं, दूत!

अब इसके अनन्तर संयुक्त वर्णोंका भान होगा तुम्हें। ये संयुक्त वर्ण बहुत ही सरस होते हैं, दूत! फिर आगे चलकर विधेय-उद्देश्यमयी उस भाव-पंक्तिका पाठ आरम्भ होगा, किन्तु उस पाठका अर्थ इतना गूढ़ रहता है, जिसे तुम जान ही नहीं सकोगे। अज्ञात रहेगा उस पाठका गूढ़ार्थ। इसके अनन्तर कुछ दिन प्रतीक्षा करते रहना।

इसके पश्चात् क्या होगा, तुम्हें बताऊँ? एक होती है महाभाव

विद्या, जो अबतक तुमने पढ़ी नहीं है दूत! वह विद्या कैसी होती है, तुम्हें बता दूँ? अच्छा, सुनो! उस विद्याके आविर्भावमें किसीको अबतक हेतुका अनुसन्धान प्राप्त नहीं हुआ है। बड़ा ही सूक्ष्म है वह। मलकी गन्धकी गन्ध नहीं है वहाँ – इतनी अमल है वह महाभावकी विद्या; और वह है प्रतिक्षण वर्धनशील। उसमें खण्डित होनेका कहीं भान नहीं होता। वह सर्वथा अखण्ड है। सीमाविहीन है वह। आजतक कोई भी उसका पार न पा सकी, न पा सका। और देखो! वाणी छू भी नहीं सकती उसे। सर्वथा सर्वांशमें वह स्वसंवेद्य है। बड़ी गम्भीर है वह, भला! उस महाविद्याका 'अथ', सो भी कहनेके लिये, इस विशुद्ध सत्त्वमयी धाराके बिन्दुपर ही अवलम्बित है। उसी 'अथ' को स्पर्श कर अब तुम अग्रसर होओगे।

इसके पश्चात् क्या है, इसे तो कोई भी नहीं कह सकती। और सत्य तो यह है कि जो आगे जाकर उसमें निमग्न हो गयी, वह कभी लौटती ही नहीं।

* * *

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'राधा-संदेश' से उद्धृत की गयी हैं। इन पंक्तियोंमें उस प्रेम-पाठशालाका, उसके पाठोंका, उसकी प्रक्रियाका और उसकी परमोच्चोपलब्धिका यह वर्णन अत्यधिक सांकेतिक और रहस्यपूर्ण है। इस वर्णनमें सात रंगोंके और सात स्वरोंके नामोंका उल्लेख है। कई बार पढ़नेके बाद जब तनिक-सा भी अर्थ-बोध नहीं हुआ तो एक बार बाबासे ही पूछा गया – बाबा! इन सात रंगोंके वर्णनके माध्यमसे क्या बात कही गयी है?

बाबाने बतलाया – उन वर्णोंके मिससे मैंने अपनी अनुभूतियोंका सांकेतिक वर्णन किया है। मेरे जीवनमें जो-जो जैसे-जैसे घटित हुआ है, उसीको वहाँ बतलाया गया है, पर वह कहा गया है बहुत ढककर। मेरे जीवनमें वही हुआ है, जिसका वर्णन वैष्णव शास्त्रोंमें आया है, पर उन शास्त्रोंमें जिन क्रमिक स्तरोंका वर्णन हुआ है और रस-मर्मज्ञों द्वारा उन्नयनके जो सोपान बतलाये गये हैं, वैसा मेरे जीवनमें नहीं है। भगवत्कृपाके फलस्वरूप प्रारम्भमें ही सर्वोच्च स्थितिपर मेरी प्रतिष्ठा कर दी गयी। उस अति महान स्तरपर प्रतिष्ठित हो जानेमें, सत्य-सत्य एक मात्र भगवत्कृपा ही मुख्य हेतु है, पर उस वर्ण-वर्णनमें वही है, जो मेरे अनुभवकी वस्तु है। यह बात अब अलग है कि मेरे जीवनमें उन

भिन्न-भिन्न सोपानोंका, उन भिन्न-भिन्न स्तरोंका प्रकाश बादमें भिन्न-भिन्न कालमें होता रहा। श्रीकृष्ण-प्रेमके विकासमें स्नेह-मान-प्रणय-राग-अनुराग-भाव-महाभावका वर्णन शास्त्रोंमें आया है। इसीको यहाँ विभिन्न रंगोंके माध्यमसे व्यक्त किया गया है। सूर्यकी शुभ्र किरणमें सात रंग होते हैं, जिनको इन्द्रधनुषमें अथवा पानीके बुलबुलेमें अथवा सप्तकोणीय काँच (PRISM) में देखा जा सकता है। ये सातों रंग एक दिनकर-रश्मिमें पर्यवसित होकर शुभ्र वर्ण धारण कर लेते हैं और परम उज्ज्वल प्रकाशका विस्तार करते हैं, जिससे सम्पूर्ण जगत आलोकित हो उठता है। सूर्य-तनया-कूल-विहारिणी एवं सूर्योपासिका श्रीराधा भी महा दिव्य भावराज्यकी एक महान रश्मि है, जो अपनी अद्वितीय अलौकिक महिमासे नित्य परिमण्डित रहती है, जो सातों भावोंकी पुञ्जिका-प्रतिष्ठा-प्रतिष्ठापिका-पोषिका है, जो सप्त-भाव-समूहमें अन्तिम सर्वश्रेष्ठ स्तर महाभावकी साकार प्रतिमा है और जिसका सम्पूर्ण अस्तित्व मलिनतासे सर्वथा शून्य सम्पूर्ण उज्ज्वलताका मूर्तिमान स्वरूप है। एक बात और, उन सात रंगोंसे इन सात भावोंकी तुलना तो की गयी है, पर यह तुलना भी अयुक्त है। हमारे प्राकृत जगतके सूर्यकी रश्मिमें जो सात रंग हैं, वे इतने अलग-अलग हैं कि एक रंगमें दूसरा रंग होता ही नहीं, पर उस दिव्य भावराज्यमें जो सातों भाव हैं, वे सारे भाव सदा एक दूसरेमें समाये रहते हैं। जो श्रीकृष्णके नामको अपने अश्रुजलसे भिगो-भिगोकर जप करता है, वही उस भावराज्यकी ओर अग्रसर हो पाता है। जप करनेसे उस त्रिकालातीत-त्रिगुणातीत-अविनाशी-अक्षर परमसत्यका बोध हो जाता है और श्रीप्रिया-प्रियतमकी बीस नख-मणियोंके शुभ दर्शनका सौभाग्य मिलता है। ब्रह्मज्ञानीको कठिन साधनाके उपरान्त जिस घनानन्द परमानन्दकी प्राप्ति होती है, वह परमानन्द तो उसे अनायास अनुभूत होने लगता है। फिर वह अनुक्षण सप्त स्वरोंपर गायन करता रहता है सप्त-भावोंसे प्रसूता एवं पोषिता रसमयी लीलाओंको और सर्वान्तमें होता है महाभाव सागरमें निमज्जन। यही इस प्रेम-पाठशालाकी सर्वोच्च महाविद्या है। जो महाभावसागरमें डूब गया, वह फिर लौटकर जगतमें नहीं आता। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्ध (११-१६-३७) में श्रीउद्धवजीसे भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जहाँ न सतोगुण है, न रजोगुण है और न तमोगुण है, वह निर्गुण अर्थात् महासत्त्व मैं हूँ। इस महासत्त्वकी स्थिति मानव

शरीरमें सर्वथा दुर्लभ है। अब इस अनोखी प्रीतिकी बलिहारी है कि जिसमें बहकर भगवान श्रीकृष्णने अपने नियममें परिवर्तन कर दिया और महासत्त्वकी स्थितिमें मुझे प्रतिष्ठित कर दिया। उनकी उस अचिन्त्य-अमाप्य प्रीतिको देखकर मेरे मुँहसे एक दोहा प्रस्फुटित हो पड़ा –

नियम हुतौ गुन देह में महाभाव नहि होन।
मेरे सुख हित साँवरो सोऊ कीनौ गौन।।

महाभावकी स्थितिका वर्णन मात्र वैष्णव ग्रन्थोंमें मिलता है। निर्गुण-निराकारवादी तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। इसीको श्रीपोद्दार महाराजने 'ज्ञानोत्तरभावराज्य' कहा है। वर्ण-वर्णनका तात्पर्य यही है कि भावपूर्ण श्रीकृष्णनामका जप करने तथा सच्ची श्रीकृष्णरति उत्पन्न होनेके बाद ही भाव-साधनाकी यात्राका शुभारम्भ होता है और इस 'भाव-यात्रा' का अन्तिम बिन्दु है महाभाव-निमज्जन।

बाबाने उस प्रेम-पाठशालाकी पाठ-प्रक्रियाका जो स्पष्टीकरण बतलाया, उसीका सारांश उपर्युक्त पंक्तियोंमें वर्णित है।

* * *

बाबाके रसावगाहनका शुभारम्भ स्वाधीनभर्तृका-भावसे हुआ। प्रियतम कान्त जिस नायिकाके अधीन होकर सर्वदा निकट वास करते हैं, उसे स्वाधीनभर्तृका नायिका कहते हैं। श्रीविशाखाजी स्वाधीनभर्तृका भावकी मूर्तिमान स्वरूप हैं और श्रीविशाखा-भावसे ही बाबाका रस-राज्यमें प्रवेश हुआ। श्रीराधाजी ही श्रीविशाखा हैं। श्रीराधाजीको अपने 'राधा-स्वरूप' की सर्वथा विस्मृति हो जाती है और वे स्वयंको पूर्ण रूपसे श्रीविशाखा मानने लगती हैं। भावकी प्रबलताके कारण वे ऐसा सोचने-समझने लगती हैं कि मैं वृषभानुनन्दिनी राधा नहीं, अपितु विशाखा हूँ। वस्तुतः वे हृदयसे ऐसा ही अनुभव करने लगती हैं। विशाखा-भाव जब और गहरा होता है तो वे स्वयंको मधुमती मानने लगती हैं। भावकी और अधिक गहराई होनेसे वे स्वयंको चन्दन मञ्जरी मानने लगती हैं। ज्यों-ज्यों भाव सघन होता चला जाता है, त्यों-त्यों वे चन्दन मञ्जरीसे स्वयंको शशिरेखा मञ्जरी, फिर शशिरेखासे स्वयंको हारहीरा मञ्जरी मानने लगती हैं। भावके आवर्त ज्यों-ज्यों सघन होते चले जाते हैं, त्यों-त्यों ऐसी परिणति उत्तरोत्तर होती चली जाती है।

उत्तरोत्तर उत्कर्षको प्राप्त होते हुए स्वाधीनभर्तृका-भावकी ये छः उर्मियाँ इसी प्रकारसे बाबाके अनुभवमें आयीं। लीलाराज्यमें बाबाकी यह भी अनुभूति है कि कृष्णवल्लभा श्रीराधाकी घन-घन केशराशिकी स्निग्धता ही श्रीविशाखा सखीके रूपमें मूर्तिमान होकर युगलकी निकुञ्ज सेवामें संलग्न रहती है। श्रीविशाखाजी स्वयं श्रीराधा हैं और श्रीराधाजीकी केश-स्निग्धताका मूर्तिमान स्वरूप भी हैं। ये अंशी भी हैं और अंश भी हैं। उस दिव्य लीलाराज्यमें अंशी-अंशका भेद नहीं रहता। अंश भी अंशीके समान पूर्ण है। इसी प्रकार रसिक युगलकी रसमयी सेवामें सतत संलग्न सभी सखियाँ-मञ्जरियाँ विभिन्न रूपोंमें निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा ही हैं और उन्हीं श्रीराधाजीके किसी अंग अथवा आभूषण आदिका मूर्तिमान स्वरूप हैं। नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा महाभाव स्वरूपा हैं और यह महाभाव सिन्धु निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णको सुख प्रदान करनेके लिये नित्य लहराता रहता है। इस नित्योच्छलित महाभाव सिन्धुमें ऊँची-नीची छोटी-बड़ी विविध भाव-तरंगें सदा उठती रहती हैं, किन्तु आठ दिशाओंसे उठनेवाली अष्ट-भाव-तरंगें प्रधान हैं और इन अष्ट तरंगोंमेंसे एक है स्वाधीनभर्तृका-भाववाली तरंग, जिसका उच्छलन-विलास ईशान दिशामें होता है। स्वाधीनभर्तृका-भावकी उत्तरोत्तर उत्कर्षोन्मुखी उर्मियाँ (इनका स्वरूप, इनकी संज्ञा, इनके प्रतीक) तथा विशाखा कुञ्जकी स्थिति, इस कुञ्जकी वनस्पति, इस कुञ्जकी केलि आदिका स्वरूप, ये सब बाबाके निजी लीलाराज्यके अन्तरंग तथ्य हैं।

इसी प्रकार उस महाभाव सिन्धुकी उत्तर दिशामें जब खण्डिता-भावकी उर्मि लहराने लगती है, तब श्रीराधा ही श्रीललिताके रूपमें मूर्तिमान हो उठती हैं। बाबाकी दिव्यानुभूतिके अनुसार श्रीराधाके अरुणाधरोंकी लालिमा ही श्रीललिता सखीके रूपमें मूर्तिमान होकर युगल-सेवामें सतत संलग्न रहती है। खण्डिता-भावकी भी उत्तरोत्तर अधिक सुख-विधायक षट उर्मियाँ महाभाव सिन्धुमें लहराती हैं और उनकी संज्ञाएँ हैं ललिता, मञ्जुश्यामा, रूपमञ्जरी, लवंगमञ्जरी, मोदिनी मञ्जरी, और माधवी मञ्जरी।

स्वाधीनभर्तृका-भाव और खण्डिता-भावके समान दिवाभिसारिका-भाव, प्रोषितभर्तृका-भाव, वासकसज्जा-भाव, उत्कण्ठिता-भाव, विप्रलब्धा-भाव और कलहान्तरिता-भावकी दिव्य तरंगें उस महाभाव सिन्धुमें क्रमशः पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम और वायव्य दिशाओंकी ओर लहराती हैं और इन

भाव-तरंगोंकी क्रमशः मूर्तिमान स्वरूप हैं श्रीचित्राजी, श्रीइन्दुलेखाजी, श्रीचम्पकलताजी, श्रीरंगदेवीजी, श्रीतुंगविद्याजी और श्रीसुदेवीजी। इन सभी भावोंकी उत्तरोत्तर सघन षट ऊर्मियाँ अपनी-अपनी दिशाओंमें लहराती हैं और प्रत्येक भावकी षट ऊर्मियोंकी अलग-अलग संज्ञाएँ हैं। इन ८ भावोंकी ६-६ ऊर्मियाँ, इस प्रकार कुल ४८ ऊर्मियाँ और एक सामान्य ऊर्मि, कुल ४९ ऊर्मियोंका विवेचन स्वयंमें एक विशद विषय है। यहाँ तो उन सबकी एक झलक मात्र प्रस्तुत की गयी है, परंतु इतना सत्य है कि लीलाराज्यके ये तथ्य बाबाकी निजी उपलब्धि हैं और काष्ठ मौनकी अवधिकी महान देन हैं।

* * *

इस भावानुभूतिमें एक स्थानपर बाबाका पूर्वाचार्योंसे किंचित् मतभेद है। रस-ग्रन्थोंमें ऐसा बतलाया गया है कि उत्कण्ठिता नायिका वह कहलाती है, जो निरपराधी प्रियतमके नहीं आनेपर प्रियतमसे मिलनेके लिये अत्यधिक उत्कण्ठित हो जाती है और विप्रलब्धा नायिका वह कहलाती है, जो संकेत प्रदान करनेवाले प्रियतमके दैवात् नहीं आनेपर आन्तरिक व्यथासे संतप्त हो उठती है। उत्कण्ठिता नायिका और विप्रलब्धा नायिका, दोनों ही प्रियतमकी प्रतीक्षा करती हैं और प्रतीक्षारत होनेके कारण ये दोनों नायिकाएँ अश्रुमोचन करती हैं, चिन्ता करती हैं, नाना प्रकारके तर्क-वितर्क करती हैं, परंतु उत्कण्ठिता नायिकाकी प्रतीक्षामें मिलनकी आशा पूर्णरूपेण है और विप्रलब्धा नायिकाकी प्रतीक्षामें मिलनकी आशा अस्तोन्मुखी है। विप्रलब्धा नायिकामें प्रियतमसे मिलनेकी आशा समाप्तिके बिन्दुपर होती है, अतः उसका हृदय निर्वेद, खेद आदिसे परिपूर्ण रहता है और खिन्नताकी अधिकतामें मूर्च्छा भी आ जाती है। रस-ग्रन्थोंमें श्रीरंगदेवीजीको उत्कण्ठिता-भावका मूर्तिमान स्वरूप माना गया है, परंतु काष्ठ मौनकी अवधिमें बाबाकी लीलानुभूति इससे भिन्न है। उत्कण्ठिता नायिका और विप्रलब्धा नायिकाकी भावदशाका जो सम्मिलन-बिन्दु हो सकता है, उस भाव-बिन्दुका मूर्तिमान स्वरूप श्रीरंगदेवीजी हैं। जिस प्रतीक्षामें पूर्ण आशा और पूर्ण निराशाके युगल बिन्दु एक दूसरेका स्पर्श कर रहे हों, ऐसी अद्‌भुत भाव-दशाका मूर्तिमान स्वरूप श्रीरंगदेवीजी हैं। यही कारण है कि श्रीरंगदेवीजीके कुञ्जकी लताओं-पौधों (मालती-जूही) आदिके पत्ते अत्यधिक चञ्चल हैं। अपने निजी लीलाराज्यके इस अद्‌भुत सत्यके सम्बन्धमें

बाबा सदा कहते रहते थे कि यह एक बड़ी विचित्र भावदशा है और वैसी विचित्रताके कारण उस भावदशाका मैं कोई नवीन नामकरण नहीं कर पाया। बाबाको कोई ऐसा उपयुक्त शब्द नहीं मिल पाया, जिसका प्रयोग उस भाव-दशाकी संज्ञाके रूपमें कर सकें। बाबाने यह भी बतलाया कि ऐसी विचित्र भावदशाके कारण कई आचार्योंने श्रीरंगदेवीजीको प्रधान सखीके रूपमें स्वीकार किया है। महावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवजीने श्रीरंगदेवीजीको ही सर्वप्रथम स्मरण-वन्दन किया है।

* * * * *

त्रि-मासीय रविवार

बाबाके लिये भाद्रमास एक अनोखा भावोद्वेलन लिये हुए प्रत्येक वर्ष ही आता रहा है। वर्षका प्रत्येक मास किसी-न-किसी भगवल्लीलासे सम्बन्धित होनेके कारण उद्दीपनका कार्य करता है, पर भाद्रमास तो बाबाकी भावनाओंको विशेष प्रकारसे उद्दीप्त कर देता था। बाबाका भावराज्य और भावराज्यकी मधुर लीलाएँ वस्तुतः अद्भुत हैं। कृष्ण पक्षमें श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव तथा शुक्ल पक्षमें श्रीराधा-जन्मोत्सवके कारण भाद्रमासका विशेष महत्त्व है। कृष्ण पक्षमें श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव नंदगाँवमें मनाया जाता है, पर श्रीनंदरायजी नहीं मनाते। बरसानेसे श्रीवृषभानुजी अपने समस्त स्वजनोंके साथ पक्षके आरम्भमें ही नंदगाँव पधारते हैं तथा अकल्पनीय उत्साहके साथ सम्पूर्ण पक्ष श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवका आयोजन और संचालन करते हैं। इसी प्रकार शुक्ल पक्षके आरम्भमें श्रीनंदरायजी सकल परिवार-परिजन-परिकर-सहित बरसाने पधारते हैं और श्रीराधा-जन्मोत्सव सम्पूर्ण पक्ष अचिन्त्य उमंगके साथ मनाते हैं। प्रीतिकी रीति विचित्र है, तभी तो नंदगाँवमें और बरसानेमें, श्रीनंदरायजीमें और श्रीवृषभानुजीमें, परस्परमें एक-दूसरेको सुख-दानकी भावना और क्रियामें होड़-सी लगी रहती है।

सं. २०१४ वि. (अर्थात् सन् १९५७) की बात है। बाबूजी और बाबा रतनगढ़ नगरमें थे और रतनगढ़में ही श्रीराधाष्टमी-महोत्सव मनाया गया था। सं. २०१४ वि. की यह श्रीराधाष्टमी १ सितम्बर १९५७ रविवारको पड़ी थी। हम साधारण जीवोंका रविवार तो रविवारीय सूर्योदयसे

आरम्भ होकर अगले सूर्योदयके साथ-साथ समाप्त हो गया, पर बाबाके लिये तो यह 'रविवार' तीन मासतक बना रहा। हम लोगोंका रविवारीय सूर्योदय सोमवारीय सूर्योदयमें परिणत हो गया, पर बाबाके उस 'रविवारीय सूर्योदय' का तीन मासतक सूर्यास्त आया ही नहीं। लौकिक दृष्टिसे बाबा इस लोकमें ही रहे और उनके शरीरके कार्य यन्त्रवत् होते रहे, पर वे इस शरीरमें थे ही नहीं। वे तो वस्तुतः तीन मासतक श्रीराधा-जन्मोत्सवकी दिव्य लीलामें लहराते रहे। श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने लिखा है कि भगवान श्रीरामचन्द्रजीके प्राकट्यके समय 'मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ', पर यहाँ तो तीन मासका एक दिवस हो गया।

बाबा तीन मासतक उस श्रीराधाजन्मोत्सवको देखते रहे, जो दिव्य लीला राज्यमें मात्र एक दिन रविवारको मनाया गया। भाद्र शुक्ल अष्टमीका आगमन होते ही प्रियतम श्रीकृष्णने बाबासे कहा – ''प्रियतमे राधे! देखो तो सही! आज वृषभानुपुरमें तुम्हारा वार्षिक शुभ जन्मोत्सव हो रहा है। अहा, क्या ही रम्य मनोहर दृश्य है।''

और प्रियतम श्रीकृष्णके साथ बाबा जन्मोत्सव देख रहे हैं। यह भी कैसी विचित्र बात है कि स्वयंका उत्सव और स्वयंके द्वारा दर्शन, एक वपुसे दृश्य और एक वपुसे द्रष्टा। जब रविवारको रतनगढ़की हवेलीमें उत्सव मनाया जा रहा था, तब बाबूजी बाबाको उत्सवमें लिवा लाये थे और बाबा उत्सवमें बैठे हुए थे, पर क्या वे यहाँ थे? भले वे शरीरसे उत्सवके मध्य विराजित थे, पर वे वस्तुतः थे अपने प्रियतमके साथ उस दिव्य लीला राज्यमें एक दर्शकके रूपमें। दिन-पर-दिन बीतते चले जा रहे थे, पर पता नहीं कि कब सूरज और चन्दा आये और गये। तीन मासतक बाबाको बाह्य सुधि बहुत कम रही। शौच-स्नान-भिक्षा आदिके कार्य यन्त्रवत् सम्पन्न होते रहते। बाबाने जो जन्मोत्सव देखा, वह 'किशोरीका स्वप्न विलास'में वर्णित है और यह वर्णन 'चलौ री आज ब्रजराज मुख निरखिये'* में प्रकाशित हो चुका है।

* * * * *

*'चलौ री आज ब्रजराज मुख निरखिये' पुस्तक 'श्रीराधामाधव सेवा संस्थान' पो. गीतावाटिका, जि. गोरखपुर पिन २७३००६ से प्रकाशित है।

रसोपासना-मन्त्रों की दिव्योपलब्धि

यह पहले बतलाया जा चुका है कि सन् १९५७ की श्रीराधाष्टमी रविवारको थी। भाद्र शुक्ल अष्टमीका यह रविवार बाबाके भाव-राज्यमें तीन मासकी अवधिवाला हो गया। इस त्रि-मासीय रविवारकी अवधिकी एक लीला सर्वथा अनोखी है। इस लीलाके माध्यमसे बाबाको रसोपासनाके दिव्य मन्त्रोंकी उपलब्धि हुई।

इस दिव्योपलब्धिका सांकेतिक विवरण बाबाने श्रीमहाराजजीको सुनाया था। यह पारस्परिक रसमयी चर्चा १० अक्टूबर १९७६ को हुई थी और यह रस-चर्चा एक-डेढ़ घण्टेतक चलती रही। इस रसमयी चर्चाका एक संक्षिप्त अंश ज्यों-का-त्यों आगे दिया जा रहा है –

रससे संसिक्त हो जानेके मार्गमें जो अवरोध आता है, उसकी ओर संकेत करते हुए बाबाने श्रीमहाराजजीसे कहा – उस रसराज श्रीकृष्णमें एक बड़ा ऐब है। उसे कृत्रिमता पसन्द नहीं तथा उसे दूजा पसन्द नहीं। श्रीकृष्ण तो व्याकुल हैं किसीको भी रसमें डुबा देनेके लिये, पर डुबायेंगे उसे, जिसमें कृत्रिमता नहीं। जिनमें कृत्रिमता है अथवा कृत्रिमताकी कणिकाके प्रति किञ्चित् भी आकर्षण है अथवा जिनके जीवनमें श्रीप्रिया-प्रियतमसे अलग किसी अन्य वस्तु या व्यक्तिके लिये कुछ या अधिक स्थान है, वे इसमें डूब नहीं पाते, अन्यथा यह भाव-सागर तो परम सुलभ है, सर्व-गम्य है।

कुछ रुककर फिर बाबाने कहा – किसी प्रकार तुम सागरके तटपर तो आ जावो। एक-न-एक दिन उस सागरकी लहरें तुमको बहा ले जायेंगी। तीर्थ-यात्रामें हमलोग वेदारण्यम् नामक स्थानपर गये थे। समुद्र-तटपर यह एक नगर है। वहाँके लोगोंने बताया कि तीन-चार मास पहले तीन भीषण लहरें आयीं। पहले तो दिनभर पानी बरसता रहा। फिर एक ऐसी लहर आयी जो रेलवे-स्टेशनकी छतसे भी ऊपर थी। नगरके तथा आस-पासके क्षेत्रोंके लोगोंको और पशुओंको बहा ले गयी। दूसरी लहर आयी, जो पहलेसे भी ऊँची थी, उसने और भी विध्वंस किया। तीसरी लहर दूसरी लहरसे भी ऊँची थी, बड़ी विशाल थी, उसने बड़े-बड़े पेड़ोंको भी उखाड़ दिया, छोटे-मोटे पेड़ोंकी तो बात ही क्या? चारों ओर था विध्वंस-ही-विध्वंस, हर ओर था विनाशके ताण्डवका नृत्य। बहुत दिनोंतक

जल बना रहा। यातायात बन्द रहा। इसको सुनकर मेरे मनमें आया कि प्रकृतिके राज्यमें जब ऐसी लहर आ सकती है, जो सब कुछ बहा ले जाय, तब एक दिन महाभाव-सागरकी कोई ऐसी विशाल लहर भी आयेगी, जो तटपर स्थित व्यक्तिको बहा ले जायेगी और उसे सागरमें डुबा देगी, परन्तु इतनी अपेक्षा तो है ही कि सागरके तटपर आ जावो, सागरके तटपर खड़े रहो।

अपना उदाहरण देते हुए बाबा कहने लगे – मैं तो पहले 'शिवोऽहम्', 'शिवोऽहम्' कहता था। इसका कट्टर अनुयायी था, पर परिवर्तन हुआ तो एक क्षणमें सारा बदल गया।

इसपर बड़ा रसमय और बड़ा भावमय विनोद करते हुए श्रीमहाराजजीने कहा – अब तो है 'साहम्', 'साहम्'।

इस विनोदपर बाबा रीझ गये, बह गये तथा वे कहने लगे – इसकी एक लीला है। अभी-अभी आपने जो कहा, उसी भाव-धारासे सम्बन्धित है। इस लीलामें श्रीराधा एवं श्रीकृष्णकी भावाभिव्यक्ति है। श्रीराधाजी कहती हैं 'श्रीकृष्णोऽहम्', 'सोऽहम्' तथा श्रीकृष्ण कहते हैं 'राधाहम्', 'साहम्'। प्रियतम श्रीकृष्ण प्राणेश्वरी श्रीराधाका रसमन्त्रोपचारोंसे सरस पूजन करनेके पूर्व उनके चिन्मय स्वरूपका स्मरण करते हुए कहते हैं –

अलक-दृगञ्चल-ललितं, रंग-तरंग-सलिलितम्।
संविद्-गगन-समुदितं, भज मुख-विधुमकलुषितम्।।

इसी प्रकार प्रियतमा श्रीराधा प्राणवल्लभ श्रीकृष्णका रस-मन्त्रोपचारसे सरस पूजन करनेके पूर्व उनके चिन्मय स्वरूपका स्मरण करके कहती हैं –

नील-सरोरुह-वरणं, नियुत-रमामति-हरणम्।
स्मर-विरहोदधि-तरणं, मुखमर्बुद-रति-शरणम्।।

पारस्परिक रस पूजनका परिणाम यह होता है कि पारस्परिक स्वरूपका परिवर्तन हो जाता है और श्रीराधाजी कहती है 'श्रीकृष्णोऽहम्' 'श्रीकृष्णोऽहम्' तथा श्रीकृष्ण कहते है 'राधाऽहम्' 'राधाऽहम्'। इस रस-पूजनके रस-मन्त्रोंकी उपलब्धि मुझे किसी अचिन्त्य एवं अलौकिक विधिसे हुई है, जिसे अव्यक्त रहने देनेमें ही मंगल है।

श्रीमहाराजजीने तो 'साहम्' कहकर मात्र भावपूर्ण विनोद किया था, परन्तु इस विनोदके निमित्तसे एक महान तथ्य प्रकाशित हो उठा। इस वर्णनको सुनकर महाराजजीका अन्तर आह्लादसे आप्लावित हो उठा।

प्रियतम से प्रेम-कलह

एक बार बाबाका प्रियतमसे प्रेम-कलह भी हुआ। यह प्रेम-कलह हुआ पूतना और कैकेयीको लेकर। पूतना और कैकेयी, दोनों सगी माँ नहीं थीं, एक ने मातृत्वका स्वांग रचा था और एक परिस्थितिसे सौतेली माँ थी, पर दोनों हैं मातृ-स्थानीया। आँचलको और आँचलके दूधको, चाहे वह आँचल किसीका भी हो और चाहे वह दूध कैसा भी हो, उसको सदा-सदा प्रणाम करनेवाले बाबाने प्रियतम श्रीकृष्णको उपालम्भ दिया – यह तुमने कौन-सा उत्तम कार्य किया कि जो माँ बनकर आयी थी, उस पूतनाके प्राण ले लिये? मान लिया कि वह कपट-माँ थी और उसने मातृत्वका स्वांग रचा था, पर इतना तो सत्य ही है कि उसने मातृ-भावसे भावित होकर तुम्हारे मुखमें स्तन दिया था, फिर उस माँका प्राणहरण कर लेना क्या श्रेष्ठ कार्य है?

प्रियतम श्रीकृष्णने पूछा – मुझे क्या करना उचित था?

बाबाने कहा – ज्यों ही पूतनाने शिशुको गोदमें लिया, शिशुके स्पर्श मात्रसे उसमें दिव्य भावका संचार हो जाना चाहिये था। स्पर्श मात्रसे वह उन्मादिनी बन जाती और उन्मादिनी पूतनाको स्तन-पान करानेकी स्मृति ही नहीं रहती। वह आजीवन उन्मादिनी ही रहती और मधुपुरीमें कंसके पास यही समाचार पहुँचता कि जो पूतना बाल-हत्याके लिये गयी थी, वह तो उन्मादिनी हो गयी है। यह तो तुम्हारे स्पर्शका प्रभाव होना ही चाहिये था।

प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – प्राणेश्वरी! किसी कल्पमें ऐसी लीला भी हो जायेगी।

फिर बाबाने कैकेयीके बारेमें कहा – माँ कैकेयीने तो तुमको अपने पुत्र भरतसे भी अधिक प्यार किया। कैकेयीका रामके प्रति वात्सल्य विश्वविख्यात है। कैकेयीके रामानुरागको देखकर माँ कौशल्या भी विस्मित होती थी और कैकेयीके कारण रामकी ओरसे निश्चिन्त थी। जो माँ कैकेयी ऐसी महावात्सल्यमयी थी, उस उत्सर्गमूर्तिके मुखपर ऐसी कालिख लगा दी कि जन्म-जन्मके लिये, युग-युगके लिये वह कलंकित हो गयी। वह किसीको मुख दिखलाने लायक नहीं रही। विश्वकी आँखोंसे वह सदाके लिये ऐसी गिर गयी कि कोई भी अपनी बेटीका नाम कैकेयी

नहीं रखेगा। जिसने तुमको अपने प्राणोंका निर्मलतम प्यार दिया, उसीको मलिनताकी मूर्ति और कालुष्यकी कोठरीके रूपमें अपकीर्तित करवा दिया। यह क्या अनुमोदनीय है?

इसपर प्रियतम श्रीकृष्ण बोले – सारा संसार यशके लिये मरता है, पर माँ कैकेयीकी बात तो सर्वथा निरुपम है। माँ कैकेयीका वात्सल्य इतना महान है कि अपने वात्सल्यास्पदके मनकी बातको रखनेके लिये उसने अपने यशकी भी बलि चढ़ा दी। संसार उसकी सराहना करता, तभी वह महान होती क्या? संसारके साधारण प्राणी भले उसे न जान पायें और जानकर भी भले उसे न समझ पायें, पर वह तो स्वतः ही स्वयंकी महिमासे सदाके लिये महिमान्वित है। अपने प्रियका प्रिय कार्य करनेके लिये अपने यशका ईमानदारी पूर्वक पूर्ण त्याग किस प्रकार किया जा सकता है, इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माँ कैकेयी है। माँ कैकेयीके उत्सर्गकी यह गरिमा सर्वथा अनिर्वचनीय, सर्वथा कल्पनातीत है।

प्रियतम श्रीकृष्णकी बातको सुनकर बाबाको चुप हो जाना पड़ा। बाबाने मनसे स्वीकार कर लिया कि प्रियतम श्रीकृष्ण उचित कह रहे हैं।

* * *

इसी काष्ठ मौनकी अवधिमें कीर-लीलाके दर्शन हुए। कीर-लीलामें अन्तरके अनवरत आँसुओंकी आह है। उधर प्रियतम श्रीकृष्ण मथुरासे द्वारका चले गये और इधर व्रजमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा अत्यधिक विरह व्यथिता हैं। श्रीप्रियाकी विरह-व्यथा द्वारका स्थित प्रियतम श्रीकृष्णके हृदयमें प्रतिध्वनित हो उठती है और वे अपना प्रीति-संदेश निजी कीरके द्वारा व्रज भेजते हैं। कीरके अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई भी ऐसा नहीं, जो मर्मकी बात वहाँतक पहुँचा दे। कीरके लिये अपने जीवनेश्वरका वियोग एक क्षणके लिये भी सम्भव नहीं। क्या व्रज, क्या मथुरा और क्या द्वारका, वह सदैव साथ-साथ रहा है, पर अब अपने जीवनसर्वस्वकी आज्ञाका अनादर भी तो सम्भव नहीं। अपने जीवनधनसे वियुक्त होते ही वह अपने स्थूल शरीरका परित्याग कर देता है और अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सूक्ष्म शरीरसे व्रज आता है। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा अपने प्राणप्रियतमके नित्य सेवक-सहचर कीरको पहचान लेती हैं

और उसके सूक्ष्म शरीरके रहस्यको जानकर अत्यधिक व्यथित हो उठती हैं।

'राधा संदेश' और 'चातक संदेश'की भाँति बाबा जब 'कीर संदेश' लिखनेकी बात अपने मनमें सोचने लगे तो प्राणप्रियतम श्रीकृष्णने थोड़ा अंकुश लगा दिया, इसीलिये कि उन गम्भीर एवं अन्तरंग भावोंकी निर्मलताको ये जागतिक लोग हृदयंगम नहीं कर पायेंगे। इस संकेतके अनुसार कीर लीलाके अनेक प्रसंग संक्षिप्त कर दिये गये।

* * * * *

लोकोत्तर भावपूर्ण प्रसंग

सन् १९५८ के अप्रैल मासमें बाबूजीको पूज्य श्रीसेठजीके आग्रहपर रतनगढ़से गोरखपुर आ जाना पड़ा। इन दिनों बाबाकी अन्तर्मुखता अपनी पराकाष्ठापर थी। बाबाके एकान्तमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित न हो, एतदर्थ बाबूजीने बाबाकी कुटियाके चारों ओर ईंटकी दीवालका एक घेरा बनवा दिया। यह घेरा भूमिसे लगभग सात फीट ऊँचा होना चाहिये। इस बाड़ेके बन जानेसे व्यवधानकी सम्भावना अत्यधिक न्यून हो गयी। बाबाकी जैसी भावमयी स्थिति चल रही थी, उसको देखते हुए बाड़ेका निर्माण आवश्यक था। केवल भगतजी और रामसनेहीजी बाड़ेके भीतर जाते थे, पर वे जाते थे समय-समयकी सेवाको सम्पन्न करनेके लिये। बाड़ेके भीतर बाबूजी, माँजी तथा बाईके अतिरिक्त अन्य कोई जा ही नहीं सकता था। केवल वही जा सकता था, जिसे बाबूजी अपने साथ लेकर जायें बाबाका दर्शन करानेके लिये। बाई दोपहरके समय जल पिलाने जाया करती थी और सूर्यास्तके समय माँ भिक्षा कराने जाया करती थीं। बाबूजी भी बाबाके पास जाया करते थे, परंतु बाबूजी बाबाकी ही रुचिका आदर किया करते थे। बाबूजीके द्वारा यह प्रयास कभी नहीं हुआ कि बाबा मुझसे बात करें। बाबा शौच जानेके लिये बाड़ेसे बाहर निकलते थे, पर उनकी दृष्टि भूमिपर लगी रहती थी। बाबाके बाड़ेके पास ही श्रीमोतीजी महाराजकी एक कुटिया थी और कुटियाके सामने एक टिन-शेड था। इस छोटेसे टिन-शेडमें अनेक लोग बैठे रहते थे इस प्रतीक्षामें कि कब बाबा शौचालयके लिये बाड़ेसे बाहर निकलें और कब उनका पावन दर्शन मिले। प्रतीक्षामें खड़े लोगोंकी ओर बाबाकी दृष्टि जाती ही नहीं थी। बाबा कुटियाके बाड़ेसे बाहर

निकलकर सीधे शौचालय चले जाते थे। उन्हें भला क्या पता कि कितने लोग खड़े हैं, वे कौन-कौन हैं और क्यों खड़े हैं।

उन अन्तरंग लीलाओंका जो दर्शन कर रहा हो और उन लीलाओंमें जो सम्मिलित हो, उसे अवकाश कहाँ है इस प्रापञ्चिक धरातलकी ओर दृष्टि उठानेके लिये। निकुञ्जकी अन्तरंग लीलाओंमें मात्र श्रीप्रिया-प्रियतम हैं और वहाँ हैं रसिक युगलकी सतत सेवामें संलग्न सखियाँ-मञ्जरियाँ। कुञ्ज-निकुञ्जकी दिव्य लीला और सखियों-मञ्जरियोंकी दिव्य संनिधिकी सरसतामें सदा निमग्न रहनेके कारण बाबाको पुरुष मात्रका दर्शन बड़ा विचित्र लगा करता था। शौचालय जाते समय यदि अचानक कभी दृष्टि ऊपर उठ गयी और यदि संयोगसे कभी कोई मूँछ-दाढ़ी वाला पुरुष दिखलायी पड़ जाता था तो बाबा मन-ही-मन सोचा करते – मैं कहाँ हूँ? मुझे यह सब क्या दिखलायी दे रहा है? ये पुरुष कहाँसे आ गये? यह कौन-सा देश है?

हमारे प्रापञ्चिक जगतके पुरुषोंकी आकृति-प्रकृति-परिधान बाबाको बड़े विचित्र लगा करते थे। प्रियतमके सखाओंके दर्शन बाबाको यमुना-तटपर, गिरिराज-परिसरमें, वन-उपवनमें होते थे, पर वे तो बड़े सुन्दर वस्त्र धारण करते हैं, उनकी मुखाकृति बड़ी सौम्य होती है, ऐसे सुन्दर वस्त्र और सौम्य आकृतिके स्थानपर अन्यका दर्शन हो तो बाबाको अटपटा लगना स्वाभाविक ही है।

एक बार बाबा अपनी कुटियाके बाड़ेके भीतर खुले स्थानपर विराज रहे थे। आकाशमें बादल घिर आये और वर्षा आरम्भ हो गयी। कब नभ मेघाच्छन्न हुआ और कब वे मेघ बरसने लगे, इसकी जानकारी भी बाबाको नहीं हुई। भावोंकी लहरोंपर लहरानेसे उत्पन्न जो मस्ती थी, उस तन्मयतामें शरीरकी सुधि भला कहाँ? श्रीप्रिया-प्रियतमके और सखियों-मञ्जरियोंके 'अवलोकनि, बोलनि, मिलनि, प्रीति, परस्पर हास' में सर्वथा निमग्न मन तो बाह्य जगतको छोड़ चुका था।

* * *

एक बार बाबा बाबूजीके साथ ट्रेनमें यात्रा कर रहे थे। बाबा बर्थपर लेटे अथवा बैठे हुए थे। बाबूजीके मनमें आया कि बाबाको जल पीनेके

बारेमें पूछना चाहिये। बाबाके पास जाकर बाबूजीने कहा – ऐ बाबा! ऐ बाबा! ऐ बाबा! आप जल पी लें।

काफी देर बाद बाबाने बहिर्मुख होकर बाबूजीसे कुछ दृष्टि मिलायी। नेत्र आधे खुले थे, दृष्टिमें शून्यता थी, मुखकी रेखाएँ अन्य-मनस्कता व्यक्त कर रही थीं। बाबाने गर्दनको तनिक-सा हिलाकर संकेत कर दिया कि जलकी इच्छा नहीं है। बाबाका संसार ही दूसरा था।

* * *

ट्रेनकी एक और घटना कृष्णजीने बतलायी –

बाबा और बाबूजी प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें यात्रा कर रहे थे। बाबा ऊपरी बर्थपर सोये हुए थे। बाबाको लघुशंकाका वेग हुआ। वेग इतना तीव्र था कि वस्त्रोंके खराब हो जानेकी आशंका थी। बाबा ऊपरी बर्थसे उतरकर नीचे आना चाहते थे, परंतु गम्भीर अन्तर्मुखताके कारण उनको न सूझ पड़ रहा था और न समझमें आ रहा था कि नीचे कैसे उतरा जाय। ज्यों-ज्यों क्षण व्यतीत हो रहे थे, त्यों-त्यों उलझन बढ़ती चली जा रही थी। एक ओर वेगकी तीव्रता और दूसरी ओर समझकी अस्तव्यस्तता, इस उलझनमें पड़े बाबा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे थे। कृष्णजी भी उसी डिब्बेमें थे। किसी अचिन्त्य प्रेरणासे बाबाको सँभालनेकी बात उनके मनमें उभरी। वे नीचे बैठे थे और उठकर तुरन्त खड़े हो गये। कृष्णजीने कहा – बाबा! क्या बात है? आपको लघुशंकाके लिये जाना है क्या?

बाबा तो मौन थे, पर कृष्णजीने अनुमान लगा लिया और उन्होंने बाबासे पुनः कहा – आप इस ओरसे और इस प्रकारसे उतर आइये।

कृष्णजीके खड़े हो जानेसे सारी बात बन गयी।

* * *

एक बार बाबा और बाबूजी स्वर्गाश्रम गये हुए थे। ग्रीष्म ऋतु होनेके कारण गर्मी खूब पड़ रही थी। बाबा अपनी कुटियामें विराज रहे थे और निमग्न थे अपनी मस्तीमें। जगतका कुछ भी भान नहीं था और भावधारामें बहते हुए कुछ गुनगुना रहे थे। बाबाने प्रातःकालसे जल नहीं पीया था, अतः जल पिलानेके लिये माँ गयी। माँने जाकर कुटियाका

दरवाजा खटखटाया तथा पुकारा भी, पर भीतरसे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। बाबा जागतिक धरातलपर होते तो उत्तर देते। उन्हें अपने शरीरकी ही स्मृति जब नहीं थी, तब माँके आगमनका भान कैसे हो पाता! माँने कुछ देरतक प्रतीक्षा की, पर जब कुटियाका द्वार नहीं खुला तो माँने मनमें यही सोचा – अभी बाबा अपनी मस्तीमें हैं। व्यवधान डालना ठीक नहीं। थोड़ी देर बादमें आकर जल पिला दूँगी।

माँ वापस आयी। वह चली तो आयी, पर मनमें रह-रह करके याद उभरती रहती थी कि बाबाने जल नहीं पीया है। थोड़ी देर बाद माँ फिर गयी और फिर उनको असफल होकर वापस लौट आना पड़ा। जब माँको तीसरी और चौथी बार भी वापस लौट आना पड़ा, तब उनको विशेष चिन्ता हुई और उन्होंने वस्तुस्थितिकी सूचना बाबूजीको दी। बाबूजी तत्काल बाबाकी कुटियाके पास आये। उन्होंने आते ही न द्वार खटखटाया और न पुकारा, अपितु द्वारके फाटकके पास कान लगाकर खड़े हो गये। वे बहुत देरतक खड़े रहे और खड़े-खड़े गुनगुनाहटकी स्वरलहरीको सुनते रहे। इसके बाद बाबूजीने स्वयं ही कुटियाका फाटक खोला और कुटियाके भीतर गये। वे भीतर गये हृदयकी सरसता और नेत्रोंकी सजलताको लिये-लिये। उस स्वर-लहरीको सुनकर बाबूजीका मन भी भाव-धारामें बहने लगा था।

बाबूजी बाबाके पास आये और अपनी दोनों हथेलीको आबद्ध करके और आबद्ध हथेलीको बाबाकी ग्रीवापर झुला करके बड़ी प्यार भरी मीठी-मीठी वाणीमें कहने लगे – बाबा! थोड़ा जल पी लीजिये।

और फिर बाबाको बाबूजीने जल पिलाया। बाबाके जल पी लेनेसे माँको बड़ा संतोष हुआ।

* * *

बाबाके दर्शन हेतु एवं उनको प्रणाम करनेके लिये व्यक्ति-व्यक्ति उत्सुक रहा करता था। काष्ठ मौन लेनेके बाद दो-तीन सालतक तो ऐसी गम्भीर अन्तर्मुखता थी कि बाबूजी किसीको भी बाबाके पास नहीं ले जाते थे। तब श्रीबनारसी नाई मासमें एक बार बाबाकी कुटियाके भीतर जाया करता था उनका केश-मुण्डन करनेके लिये। जब वह शीशके सारे केशोंको उतारकर कुटियाके बाहर आता था, तब न जाने कितने बड़े-बड़े लोग

श्रीबनारसी नाईके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया करते थे और मन-ही-मन कहा करते थे कि यह कितना सौभाग्यशाली है, जो महाभाव-निमग्न बाबाका स्पर्श करके आ रहा है।

* * *

स्थान जितना जन-शून्य और वायुमण्डल जितना रव-शून्य रहेगा, बाबाके लिये उतनी ही अधिक अनुकूलता रहेगी, अतः बाबूजीने कह रखा था कि कुटियाके पास न कोई जाये और न कोई हल्ला करे। इस प्रकारका स्थायी निर्देश होनेके कारण कुटियाके चारों ओरका वातावरण बड़ा शान्त रहा करता था।

एक बारकी बात है, श्रीठाकुरजी बाबाकी कुटियाके पासवाली पगडंडीसे होते हुए अपनी कुटियापर जा रहे थे। उन दिनों ठाकुरजी जिस कुटियामें ठहरा करते थे, वह बाबाकी कुटियाके पीछेकी ओर बनी हुई थी। वे पगडंडीपर चलते-चलते स्वामी श्रीहरिदासजी महाराजका एक पद अपनी मस्तीमें गाने लगे। वह पद है –

तू रिस छाड़ि री राधे राधे।
ज्यौं ज्यौं तोकों गहरु त्यौं त्यौं मोकों बिथा री साधे साधे।।
प्राननि कों पोषत हैं री तेरे बचन सुनियत आधे आधे।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा तेरी प्रीति बाँधे बाँधे।।

ठाकुरजी मात्र गुनगुना नहीं रहे थे, अपितु उच्च स्वरसे गा रहे थे। पद गाते-गाते अपनी कुटियापर पहुँचे। पहुँचकर भी पदका गायन होता रहा। अब बैठकर अपनी मस्तीमें गाने लगे। नीरव और एकान्त वातावरण होनेसे वे और भी उच्च स्वरसे गाने लगे। ठाकुरजी अपने आपको भूल गये। स्वरकी आलापचारीमें तथा गायनके आरोहावरोहमें ठाकुरजीको समयका ज्ञान नहीं रहा। वे इस पदको लगभग डेढ़-दो घंटे तक गाते रहे।

इसी बीच बाबूजी बाबाके पास आये। मध्याह्नका समय था। ऐसा लगता है कि आज किसी कारणसे जल पिलानेके लिये बाई नहीं आयी, अतः बाबूजी आये। बाबूजीने बाड़ेका कपाट धीरेसे खोला। खोलते ही जो दृश्य देखा, उससे बाबूजी तो अवाक् रह गये। बाबाकी कुटियाके सामने बाड़ेके भीतर लीचीका एक पेड़ है। पेड़की एक डालको दोनों हाथसे पकड़े

हुए बाबा खड़े हैं, कुछ लटकते हुए-से खड़े हैं और खड़े-खड़े अपनी मस्तीमें झूम रहे हैं। यों कह लीजिये कि वे डालको पकड़े-पकड़े झूल रहे हैं। बाड़ेके भीतर आ करके और कपाटको बन्द करके बाबूजी चुपचाप खड़े हो गये और खड़े-खड़े देरतक बाबाकी मस्तीभरी स्थिति देखते रहे। बाबाको पता नहीं चला कि बाबूजी बाड़ेके भीतर आ गये हैं और उनको देख रहे हैं। बाबूजीको भी खड़े-खड़े बहुत देर हो गयी। फिर बाबूजीने बाबाको सम्बोधित करके पुकारा। बाबूजीके स्वरको सुनते ही बाबाने मुड़कर देखा और धम्मसे वहीं भूमिपर बैठ गये। स्वयं बैठ गये और वहींपर बाबूजीको भी बैठा लिया तथा कहने लगे – पता नहीं, यह बात कैसे बन गयी कि आज यह ठाकुर उसी भावका पद गाने लग गया, जिसमें मैं बह रहा था। मेरा मन मानकी भाव-धारामें डूबा हुआ था। नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकिशोरीके मानके विमोचनके लिये नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण जैसा अनुनय और मनुहार करते हैं, उसी भावका पद यह ठाकुर गाने लगा। इस ठाकुरको भला क्या पता कि मेरी भावदशा क्या है, पर इसने मेरी मनकी स्थितिके अनुकूल पद गाया। आज इसके गायनसे बड़ा सुख मिला।

इस विवरणको सुनकर बाबूजीको भी बड़ा सुख मिला। बाबूजीने बाबाको जल पिलाया ही, उन एकान्त क्षणोंमें मानकी चर्चा भी बहुत देरतक चलती रही।

* * *

एक बार बाबा अपने बाड़ेके भीतर इतने अधिक भावाविष्ट हो उठे कि केवल एक शब्द 'तुम' को बार-बार बहुत देरतक गाते रहे। 'तुम-तुम-तुम-तुम-तुम-तुम-तुम-तुम' का अनवरत गायन करना और इसीके साथ बाड़ेके उस नितान्त एकान्तमें उन्मुक्त भावसे नृत्य करना, बाबाकी यह मधुर लीला बहुत देरतक चलती रही। इस नितान्त एकान्तमें न कोई वहाँ देखनेवाला था और न बाबाके भीतर दिखावेकी कोई स्फुरणा थी। यह भावोच्छलन तो दृष्ट लीलाका एक सहज परिणाम था। वह लीला थी श्रीप्रिया-प्रियतमके एकान्त झूलनकी। कदम्बके वृक्षपर झूला पड़ा हुआ है और श्रीप्रिया-प्रियतम झूल रहे हैं। झूलते-झूलते श्रीप्रियाजीको कदम्ब वृक्षके पत्ते-पत्तेमें ऐसा दिखलायी देने लगा कि श्रीप्रिया-प्रियतम झूल रहे हैं। इस

छविको देखकर श्रीप्रियाजी भ्रमित हो उठीं। वे सोचने लगीं कि हम सत्य हैं अथवा पात-पातमें दिखलायी देनेवाले श्रीप्रिया-प्रियतम सत्य हैं। श्रीप्रियाजी इस भ्रमसे अत्यधिक अभिभूत हो उठीं। उसी समय श्रीप्रिया-प्रियतमके चरण-युगलसे शुक और सारिकाका आविर्भाव होता है और वे गा-गा करके बतलाने लगते हैं और सत्यकी ओर संकेत करने लगते हैं कि 'तुम-तुम-तुम-तुम'। शुक-सारिकाके गायनको सुनकर बाबा अपनी चौकीके बिस्तरपरसे नीचे उतरकर स्वयं गाने लगे और नृत्य करने लगे।

जिस समय बाबा हमलोगोंके सामने इस लीलाका वर्णन कर रहे थे, वे वर्णन करते-करते 'तुम-तुम-तुम-तुम'का गायन करने लगे। कभी जल्दी-जल्दी बोलकर, कभी धीरे-धीरे उच्चारण कर और कभी मीठे-मीठे गा कर बाबाने उस निकुञ्ज लीलाकी जो एक मधुर झलक दिखलायी, वह बड़ी ही मनभावनी लग रही थी।

जिस प्रकार बाबा बाड़ेके भीतर एक बार 'तुम-तुम' बहुत देरतक गाते रहे, इसी प्रकार एक बार 'निया-कप्पा-पिया-कप्पा' गाते रहे। 'निया-कप्पा' माने नीला कपड़ा और 'पिया कप्पा' माने पीला कपड़ा। श्रीप्रिया-प्रियतमके नीलाम्बर और पीताम्बरकी मनोहर छविसे मन इतना अधिक अभिभूत हो उठा कि बाबा उन वस्त्रोंका ही गीत गाने लगे। यह स्वाभाविक ही है। वे वस्त्र भी उस चिन्मय राज्यकी वस्तु होनेके कारण चिन्मय और दिव्य हैं। थोड़ी देरके लिये नहीं, यह गायन कई घंटेतक चलता रहा। बाबा अपने आसनपर कभी बैठ जाते, कभी लेट जाते और कभी खड़े हो जाते। बाबाकी मस्तीकी सीमा नहीं थी। वह झूम अपने ही ढंगकी थी। कोई देखता तो यही कहता कि क्या यह व्यक्ति पागल है? वास्तविकता यह है कि जगतके साधारण व्यक्तिके लिये समझना तो दूर रहा, वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि महाभावका सागर जब लहराने लगता है, तब उसकी उत्ताल तरंगोंका स्वरूप क्या होता है और उन लहरोंपर नृत्य करनेवालेका जीवन क्या-से-क्या हो जाया करता है।

* * * * *

काष्ठ-मौनावधिमें गम्भीर अन्तर्मुखता

बाबाको भिक्षा करानेके लिये माँ जाया करती थी। भिक्षा करनेके लिये माँने पत्तल परोस दी है, पर पत्तलकी वस्तुओंको बाबाकी वृत्ति ग्रहण नहीं कर पा रही है। माँको भिक्षाके समय अनेक बार बतलाना पड़ता था कि यह रोटी है, यह भात है, यह दाल है, यह शाक है। एक बार भिक्षा कराते समय माँने बाबासे कहा – यह शाक है, इसे आप खा लीजिये।

माँके कहते ही बाबा वह शाक खा गये। सारा-का-सारा शाक खा गये। भिक्षा हो चुकनेके बाद जब अन्य लोगोंने वह शाक खाया तो वह खाया नहीं जा सका। उस शाकमें मिर्च बहुत ज्यादा थी। मिर्चकी भीषणताको देखकर चकित स्वरमें माँ कहने लगी – हे राम! बाबाने यह शाक कैसे खाया होगा? उनको तो तनिक-सी भी मिर्च सह्य नहीं। इस शाकको खाकर उन्हें तो बड़ा कष्ट हुआ होगा।

वास्तविकता तो यह है कि बाबा कष्टानुभूतिके धरातलसे बहुत दूर थे। 'बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही'। भावराज्यमें प्रवेश करनेके बाद बाबा पाञ्चभौतिक आवरण (अर्थात् शरीर) से इतना अधिक अतीत हो गये थे कि भीषण मिर्चकी तिक्तताकी अनुभूति भी उस भाव-निमग्नताकी स्थितिको प्रभावित नहीं कर सकी। खट्टा-मीठा-तीखा-तीताकी अनुभूति और स्मृति तभीतक है, जबतक शरीरसे सम्बद्धता बनी रहती है।

इसी तरह रतनगढ़का एक प्रसंग और है। प्रायः सूर्यास्तके समय बाबाको भिक्षा माँ करवाया करती थी और मध्याह्नके समय जल पिलानेके लिये बाबूजी जाया करते थे। एक बार बाबूजी जल पिलानेके लिये हवेलीके छतवाले कमरेमें गये। इसी एकान्त कमरेमें बाबा रहा करते थे। बाबाको किसी प्रकारका व्यवधान नहीं हो, इसीलिये छतके एकान्त कमरेमें रहनेकी व्यवस्था की गयी थी। बाबूजीने देखा कि बाबा कमरेमें नहीं हैं। बाबूजी सोचने लगे कि क्या बाबा शौचके लिये गये हैं, पर इस समय तो वे प्रायः नहीं जाया करते हैं। उसी समय बाबूजीको दिखलायी दिया कि बाबा छतपर खड़े हैं। उनके शरीरपर मात्र कौपीन है। गर्मीके दिन होनेसे धूप इतनी कड़ी थी कि छतपर पैर रखते ही तलवा जलने लगता था। ऐसी कड़कड़ाती धूपमें तपती छतपर बाबाको खड़े देखकर बाबूजीको बड़ा कष्ट हुआ। बाबा तो एकदम शान्त खड़े

थे। अन्तर्मुख बाबाको शरीरका भान नहीं था और न थी छतके तपनकी अनुभूति। बाबूजीने जाकर बाबाका हाथ पकड़ा और वे उन्हें कमरेमें ले आये। थोड़ा समय बीत जानेपर तथा ऊष्माके शमित हो जानेपर बाबूजीने बाबाको जल पिलाया।

* * *

उन दिनों बाबाकी निजी सेवामें रामसनेहीजी और राधेश्याम भगतजी रहा करते थे। बाबाकी भाव-दशाका वर्णन करते हुए एक बार रामसनेहीजीने बतलाया था – बाबा इतने भाव-निमग्न रहा करते थे कि भिक्षा करते समय भोजनकी सुधि नहीं रहा करती थी। उन्होंने एक कौर मुखमें ले लिया, परंतु कौरको चबाने और निगलनेकी विस्मृति हो गयी। लीलाराज्यमें गहरे चले जाते ही मन तनसे अलग हो गया। अन-मन होते ही शारीरिक क्रियाओंका व्यापार स्वतः कुण्ठित हो गया। बाबाको भिक्षा करानेके लिये माँको बहुत-बहुत देरतक बैठे रहना पड़ता था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद ग्रासको उठानेके लिये अथवा चबानेके लिये अथवा निगलनेके लिये याद दिलाना पड़ता था। याद दिलानेपर मन जब कुछ प्रकृत धरातलपर आता था, तब ग्रासका चबाया जाना और निगलना हो पाता था। बाबाके भिक्षा करनेमें प्रायः एक-डेढ़ घंटे लग जाया करते थे। बाबाको प्रायः देह-भान नहीं रहा करता था। काष्ठ मौनके समय बाबा यदि खड़े हैं तो चार-चार घंटेतक लगातार एक स्थानपर खड़े ही रह जाते। वे किस भावधारामें बह रहे हैं, यह तो वे ही जानें, पर देखने वालेके लिये तो वे एक पाषाणस्तम्भके समान दिखलायी देते थे।

काष्ठ मौन व्रत लेनेके बाद डेढ़-दो वर्षतक बाबाकी अन्तर्मुखता अपनी पराकाष्ठापर थी। इस अवधिमें किसीकी ओर दृष्टि उठाकर भी उन्होंने नहीं देखा। जब बाबाको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाना होता था तो वे बाबूजीके साथ जाया करते थे और जाते समय या तो बाबूजी बाबाका हाथ पकड़े रहते थे अथवा बाबाकी दृष्टि बाबूजीके कुरतेके आँचलपर रहा करती थी। पीठकी ओर लटकते हुए कुरतेके अन्तिम छोरको दृष्टिसे 'पकड़े' हुए बाबा चला करते थे।

संतों और शास्त्रोंका कथन है कि लीलासिन्धुमें नितान्त निमग्नताका यह सहज और स्वाभाविक परिणाम है। जन-साधारणकी भाँति वह न बोलता है, न चलता है और न हिलता है। उसकी शब्दरहितता-गतिरहितता-स्पन्दनरहितता ही परिचायिका बन जाती है अबाध रसास्वादन और अगाध रसावगाहन वाली दिव्य लोकोत्तर स्थितिकी। देवर्षि नारदने कहा है कि 'उसे' जान करके और प्राप्त करके वह

सिद्ध प्रेमी 'न रमते, नोत्साही भवति, मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति' और 'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव चिन्तयति'। वह अनासक्त-अनुत्साही-मत्त-स्तब्ध-आत्माराम प्रेमी उसीका अवलोकन करता है और उसीका चिन्तन करता है। श्रीमद्भागवत महापुराणमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है 'विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ'। अर्थात् हरिभक्त अमृतके सागरमें क्रीड़ा करता है। प्रेमराज्यकी यह परमावस्था है ही ऐसी, जहाँ रस-सिद्ध-प्रेमी रस-सागरकी लहरोंपर सदा संतरण करता रहता है। अपने अनुभवके आधारपर बाबूजीने भी उस अनिर्वचनीय और अचिन्त्य स्थितिकी ओर संकेत करते हुए कहा है —

अन्तरमें हो रहा खेल अति मधुर विलक्षण।
बाहर कैसे दीखे वह निश्शब्द अलक्षण।
कौन बताये? किसे? वहाँके कैसे अनुभव?
आ न सके पल एक छोड़कर वह रस नित नव॥
बाहर आते समय रोक देती वह लीला।
भीतर ही है रमा रही वह चारु सुशीला॥
उस लीलाका त्याग बड़ा ही कठिन, असम्भव।
इसीलिये बन रहा नहीं बाहर कुछ सम्भव॥
मधुर मनोहर सुधामयी लीला नित होती।
जगी उसमें वृत्ति, बाह्य जगमें वह सोती॥
मन-इन्द्रिय सब अंग बुद्धि उसमें ही तन्मय।
हुए इसीसे बाह्य बुद्धिके कार्य सभी लय॥

सभी बाह्य कार्योंका 'विराम' ही संकेत कर रहा है कि उस लीला-निमग्नके मन-इन्द्रिय-बुद्धि आदि कहाँ तन्मय हो रहे हैं। बाबाकी जगतके प्रति घोर उपरामता और शरीरके प्रति घोर उदासीनता, इस प्रकार मम-परकी नितान्त विस्मृति ही उस अनिर्वचनीय स्थितिकी ओर संकेत कर रही है कि बाबा प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके दिव्य महान नामामृत-रूपामृत-प्रेमामृत-लीलामृत-गुणामृत-स्वरूपामृतके रस-सागरमें सतत और सर्वथा निमग्न हैं।

बाबाने इस प्रकारके भाव कई बार व्यक्त किये कि काष्ठ मौनकी अवधिमें कई बार भावोंका प्रवाह इतना तीव्र रहता था कि माथा भन्ना उठता

था। ऐसा लगता था कि माथा फट जायेगा। वह भाव-प्रवाह है चिन्मय राज्यकी वस्तु और उस दिव्य वस्तुके भारको यह शरीर वहन करनेमें असमर्थताका अनुभव करने लगता है। भावोद्वेलनका आधिक्य भी तो शारीरिक रुग्णताका एक कारण है और इससे शरीरमें कई प्रकारके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। बाबाके सिरमें कभी-कभी पीड़ा होने लगती थी। जब ऐसी दशा उपस्थित होती और जब स्थिति सहनकी सीमाका अतिक्रमण करने लगती तो बाबा कुटियाके बाहर आकर नभके विस्तारको, वृक्षोंकी हरियालीको, लताओंके पुष्पोंको देखने लगते, जिससे भाव किंचित् शमित हो और इन प्राकृतिक दृश्योंको देखनेका परिणाम अनुकूल होता था। एक दो घंटा व्यतीत होनेके बाद शारीरिक स्थिति कुछ ठीक हो पाती थी।

* * *

एक और प्रसंग ध्यान देने योग्य है। बाबाके काष्ठ मौनके बाद बाबाके अनेक दायित्वोंको बाबूजीने अपने ऊपर ले लिया। पहले जब बाबा सक्रिय थे तो अनेक आत्मीय जनोंके हितका चिन्तन और सम्पादन वे स्वयं ही किया करते थे, किन्तु कठोर मौन व्रतके बाद बाबाकी घोर अन्तर्मुखतासे बाबूजीके उत्तरदायित्वकी परिधि बहुत विस्तृत हो गयी। ठाकुर श्रीघनश्यामजी काफी रुग्ण हो गये थे, अतः ठाकुरजीकी चिकित्सा करानेके लिये बाबूजीने उन्हें वृन्दावनसे रतनगढ़ बुला लिया।

चिकित्सासे ठाकुरजीको क्रमशः स्वास्थ्य लाभ होने लगा। एक दिन ठाकुरजी अपने कमरेमें सारंगी बजाने लगे। वे सारंगीपर पीलू राग बजा रहे थे। इसी समय बाबा अपने कमरेसे निकलकर शौचालय गये। ठाकुरजीका कमरा इतनी दूरीपर था कि वहाँसे सारंगीकी स्वरलहरी बाबाके शौचालयतक भली प्रकार पहुँच रही थी। इधर ठाकुरजी अपनी मस्तीमें बजा रहे थे और उधर बाबा पीलूरागकी लहरीमें मस्त हो रहे थे। बाबाकी एक रचना है, जिसमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा शुभ्र एवं मृदुल बालुकामय पुलिनपर घुटने टेककर बैठी हुई है और यमुनाजीसे विनम्र प्रार्थना कर रही है – 'मेरे साँवर उतरेंगे पार, कालिन्दी धीरे बहो'। यह पंक्ति पीलू रागमें ही गायी जाती है। पीलू रागकी लहरीमें लहराते हुए लीला-निमग्न बाबाको समय-ज्ञान भूल गया। विमुग्ध बाबा तीन घंटेसे अधिक समयतक शौचालयमें ही रहे।

बाबाको क्या पता कि बाहर क्या हो रहा है? परिचर्या-रत

श्रीरामसनेहीजी और श्रीभगतजी बड़े चिन्तित हो रहे थे कि क्या हो गया? बाबा कभी इतनी देरतक शौचालयमें नहीं रहा करते थे। अधिक-से-अधिक आधा घंटातक, पर आज तो तीन घंटासे भी अधिक समय हो गया। श्रीरामसनेहीजीने जाकर सारी बात बाबूजीको बतलायी। बाबूजी तत्काल शौचालयकी ओर आये। आते ही उनके कानमें सारंगीकी स्वरलहरी पड़ी। बाबूजी तुरंत समझ गये कि सारंगी-वादनके मादक प्रभावके कारण बाबाको स्वयंकी सुधि नहीं है। बाबाको सँभालनेका कार्य तो बादमें होगा, बाबूजी पहले ठाकुरजीके कमरेमें गये। बाबूजीको सामने देखते ही ठाकुरजीने हड़बड़ा करके सारंगीका बजाना बन्द कर दिया और वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। ठाकुरजीके कंधेपर हाथ रखकर बाबूजीने कहा – भइया! बाबाको तन्तु-वाद्य बड़े प्रिय हैं और उनमें भी उन्हें सारंगी तो बहुत अधिक प्रिय है। एक बात और, रागोंमें भी पीलू रागसे बड़ा भावोद्दीपन होता है। सारंगीपर बजाये गये पीलू रागका बाबापर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनको स्वयंकी स्मृति नहीं रही। बाबाको शौचालय गये साढ़े तीन घंटे हो गये और अभीतक वे बाहर नहीं निकले। तीन घंटेसे उन्हें अपनी सुध-बुध नहीं है।

ठाकुरजी समझ नहीं पा रहे थे कि इसे मैं सारंगी-वादनकी सराहना कहूँ अथवा सारंगी-वादनसे निवारण मानूँ। बाबूजीके मुखसे यह सुनकर ठाकुरजीको संकोच तो हो रहा था, पर साथ ही प्रसन्नता भी। बाबा अपनी भावभरी मस्तीमें हैं, इसे सुनकर प्रसन्नता; किन्तु बाबाको साढ़े तीन घंटे शौचालयमें रहना पड़ा, इससे ठाकुरजीको संकोच भी कम नहीं हुआ। ठाकुरजीके पाससे बाबूजी बाबाके पास गये और उनसे शौचालयसे बाहर आनेके लिये कहा।

* * * * *

'जय जय प्रियतम' काव्य

'जय जय प्रियतम' काव्यकी रचनाकी स्फुरणा सर्वप्रथम व्रज-भूमिमें हुई। नवम्बर १९५६ से अप्रैल १९५८ तक बाबा और बाबूजी रतनगढ़में रहे। इसी १९५८ के जनवरी मासमें बाबा और बाबूजी रतनगढ़से व्रजभूमि गये थे श्रीगिरिराज भगवानकी परिक्रमा लगानेके लिये। साथमें भक्तोंका भी समुदाय था, जो भिन्न-भिन्न स्थानोंसे परिक्रमा हेतु वहाँ आ गया था। सभीके

ठहरनेका प्रबन्ध किया गया था बिड़ला-मन्दिरमें, जो वृन्दावन और मथुराके मध्य स्थित है। इन दिनों बाबाका अति कठोर काष्ठ-मौन-व्रत चल रहा था, अतः इसी बिड़ला-मन्दिरके एक कमरेमें बाबाके नितान्त एकान्त आवासकी व्यवस्था की गयी थी।

एक बार बाबा इस बिड़ला मन्दिरके एक खुले स्थानमें श्रीधाम वृन्दावनकी ओर मुख करके बैठे हुए थे। तभी अचानक नेत्रोंसे अश्रुका प्रवाह बह चला, साधारण नहीं, अनर्गल प्रवाह। कोई हेतु नहीं, फिर भी अनर्गल अश्रु-प्रवाह बाबाके कपोलोंको रह-रह करके संसिक्त कर रहा था। उसी समय बाबाने एक मयूरको नृत्य करते हुए देखा। इससे और अधिक भावोद्दीपन हुआ। फिर भावोंका वेग इतना अधिक बढ़ चला कि समक्ष स्थित वृन्दावन और व्रजभूमिका दिखलायी देना बन्द हो गया। स्थूल वृन्दावन तिरोहित हो गया और बाबाके दृष्टि-पथपर अवतरित हो उठा दिव्य चिन्मय वृन्दावन, केवल दिव्य चिन्मय वृन्दावन ही नहीं, अपितु वहाँकी दिव्य रसीली लीलाकी अद्‌भुत-अभिनव अवली। तभी लीलाके प्रसंग और भाव, काव्यके छन्दोंमें ढलने लग गये।

इन छन्दोंकी रचनामें कोई क्रम नहीं था, पर उस क्रमबद्धताके अभावोंमेंसे एक अद्‌भुत भवितव्यकी सम्भावना उभरकर सामने उपस्थित हो गयी। ऐसा लगता है कि इस अद्‌भुत भवितव्यको बाबाके समक्ष प्रस्तुत करनेके लिये किसी अचिन्त्य विधानसे छन्दोंकी रचनामें क्रमबद्धताका समावेश नहीं हो पाया। इस समय जिस प्रकारसे पंक्तियोंकी रचना हुई, उससे बाबाको अनुमान हो गया कि जिस काव्यकी भविष्यमें रचना होनेवाली है, उसके कुल ग्यारह शतक होंगे। प्रथम शतककी आठ पंक्तियाँ, द्वितीय शतककी चार अथवा आठ पंक्तियाँ, इस प्रकार प्रत्येक शतककी चार अथवा आठ अथवा सोलह पंक्तियोंकी रचना हो गयी। ग्यारह शतकोंकी आरम्भिक पंक्तियोंकी रचना उसी बिड़ला मन्दिरमें तत्काल हो गयी। क्रमकी विशृंखलताने ही संकेत दे दिया कि कुल ग्यारह शतकोंकी रचना होगी।

ज्यों ही महाभाव-भावित बाबाको यह आभास हुआ कि ग्यारह शतकोंवाले किसी भावी काव्यकी रचनाके ये पूर्व-संकेत हैं, त्यों ही उन्होंने प्रियतम श्रीकृष्णसे किंचित् उपालम्भ-मिश्रित स्वरमें कहा – जो अबतक अनेक भक्त कवियों द्वारा लिखा जा चुका है. वही सब मेरे द्वारा पुनः

लिखवानेसे क्या लाभ ?

बाबा तो श्रीराधा-भावमें थे। बड़े प्यार भरे शब्दोंमें परम ऐकान्तिक सम्बोधन करते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – प्राणेश्वरि! तुम रचना करो तो सही।

बाबाने पुनः उसी स्वरमें कहा – वह रचना पिष्ट-पेषण मात्र ही तो होगी। मुझसे व्यर्थ श्रम क्यों करवा रहे हो? यदि रचना करवानी ही हो तो कुछ ऐसी करवाओ, जो आजतक हुई ही नहीं हो। वह एक नवीन रचना हो।

अपने अनुरोधमें और अधिक माधुर्य घोलते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – प्राणाधिके! तुम्हारी भावनाके अनुरूप ही रचना होगी।

प्राणाधिक प्रियतम श्रीकृष्णने जब बाबाकी भावनाका अनुमोदन कर दिया, तब और कुछ कहनेके लिये रह ही क्या गया था। बाबाका मन श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-सिन्धुमें निमग्न था ही, तभी मनकी ऊर्मिल भावनाएँ अनायास और अचानक काव्यकी पंक्तियोंके साँचेमें ढलने लग गयीं। इसके पहले बाबाने कभी भी काव्य-रचना नहीं की थी। काव्य-रचनाका प्रयास भी बाबाके द्वारा नहीं हुआ था। बाबाको न कवि कहलानेका चाव था और न काव्य-जगतमें किसी प्रकारकी प्रतिष्ठा पानेकी चाह थी। कविताको और पदको सुननेकी उमंग तो बाबाके मनमें रहा करती थी, पर कविता रचनेकी स्फुरणा उनके मनमें कभी उदित हुई ही नहीं। यह सर्वप्रथम अवसर था, जब बाबाके अन्तस्तलमें काव्य-धारा स्वतः प्रस्फुटित हो पड़ी। कविके हृदयके संगीतको ही कविता कहते हैं। हृदयके कोमल भावोंकी मधुरताका आधिक्य जब सीमाको पार करने लगता है, तब वह आश्रय पाना चाहता है कान्त-कलित पदावलीके लालित्यकी मृदुल परिधिमें। बाबाके अन्तरके भावोंकी वह ऊर्मिलता न जाने कितनी सुन्दर, कितनी मधुर रही होगी कि वह ढलने लग गयी काव्यकी सुन्दर-सुन्दर शब्दावलीमें। लोगोंको भला क्या पता कि बाबाके भीतर-ही-भीतर क्या चल रहा है। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि उन एकान्त क्षणोंमें कविताके धरातलपर भावोंकी ऊर्मिलताके अवतरणका शुभारम्भ हो गया है।

काष्ठमौनकी कठोरताके कारण कागज-कलम माँगा जाना सम्भव नहीं था और जो-जो दिव्य लीलाएँ दृष्टि-पथपर आतीं, उनकी अभिव्यक्तिके

क्रमका शुभारम्भ बिड़ला मन्दिरसे ही हो चुका था, अतः कई वर्षोंतक यह काव्य बाबाकी स्मृतिमें सुरक्षित रहा। जब यह व्रत शिथिल हुआ, तब बाबाने इसे बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) को लिखवाया। बाबा बोलते जाते थे तथा बाई लिखती जाती थी। इस लेखन-कार्यमें बाईके अतिरिक्त बाबूजीने भी सहयोग दिया। मौनव्रतके शिथिल होनेपर भी काव्य-सृजनमें विराम आया नहीं। अन्य प्रकारके काव्यकी रचनाका क्रम चलता रहा। यह आवश्यक नहीं कि जिस समय काव्य-रचना हो रही हो, उस समय बाई अथवा बाबूजी उपस्थित रहे। अनेकों पंक्तियोंकी रचना हो जाती और जब बाई आती, तब फिर बाबा बाईको लिखनेके लिये कहते। इसमें अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि उन विविध काव्योंकी रचित पंक्तियाँ विस्मृत हो जातीं और जो विस्मृत हो गयीं, वे सदाके लिये विलुप्त हो गयीं।

ग्यारह शतकों वाला यह काव्य कहलाया 'जय जय प्रियतम' काव्य। इस काव्यकी प्रत्येक पंक्तिके अन्तमें 'प्रियतम' शब्द आता है और यह 'प्रियतम' शब्द सम्बोधनात्मक शब्द है। प्रत्येक पंक्तिमें वह सम्बोधन इसलिये है कि अपने प्रियतमको सुनाते हुए ही प्रत्येक पंक्तिकी रचना प्राणप्रिया द्वारा हो रही है। यह काव्य आद्यन्त तुकान्त नहीं है। रचनाके प्रवाहमें तुक बैठ गया तो उत्तम, अन्यथा तुक बैठानेका आग्रह मनमें नहीं था। रचित काव्यमें न तो संशोधन करना था और न परिवर्तन। पंक्तियोंमें जो भाव ढल गये और जिस प्रकारसे ढल गये, वही स्वीकार्य था। हाँ, एक स्थानपर एक परिवर्तन बाबाने नहीं किया, अपितु बाबासे प्रियतम श्रीकृष्णने करवाया। जब काव्य-रचना होती थी तो बाबाके सामने उपस्थित रहते थे प्रियतम श्रीकृष्ण। प्रथम शतकके आरम्भमें एक स्थानपर एक पंक्ति आयी है 'गोबर मिट्टीसे यद्यपि थी अवनी लीपी पोती प्रियतम'। पहले 'गोबर' शब्द नहीं था। बाबाने रचना करते समय प्रयोग किया था 'गैरिक' शब्द। प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – 'गैरिक' शब्दका प्रयोग मत करो।

प्रियतम श्रीकृष्णका ऐसा संकेत मिलते ही बाबाने शब्दका परिवर्तन कर दिया और 'गैरिक' शब्द के स्थानपर 'गोबर' शब्दका प्रयोग किया।

इसी प्रकार एक बार एक चरणकी पूर्ति स्वयं प्रियतम श्रीकृष्णने की। बाबाके द्वारा छन्दके तीन चरणोंकी रचना हो गयी, पर चौथा चरण उभरकर सामने नहीं आया। जब पर्याप्त विलम्ब होने लगा तो चौथे

चरणको पूर्ण करते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – ''प्राणोंका सौदा होता है क्षणमें कुछ ऐसे ही प्रियतम''। यह चरण-पूर्ति चतुर्थ शतकके छन्द क्रमांक ३२४ में है।

'जय जय प्रियतम' काव्यके चौथे शतककी इस चरण-पूर्तिके सम्बन्धमें एक बार बाबाने बतलाया था – यह पंक्ति कोई साधारण वाक्य नहीं है, अपितु मन्त्र है।

'जय जय प्रियतम' काव्यसे सम्बन्धित अनेक तथ्य प्रकाशित पुस्तककी भूमिकामें उल्लिखित हो चुके हैं। उनकी आवृत्ति करना उचित नहीं। इस काव्यके कुछ छन्द बानगीके रूपमें यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण श्रीअक्रूरके साथ मथुरा चले गये। विरह-विकला प्रेम-प्रतिमा वृषभानुनन्दिनीको जीवन नितान्त भार-स्वरूप लगता है। वे स्वयंको श्रीयमुनाजीके शीतल प्रवाहमें विसर्जित कर देना चाहती हैं। आत्म-विसर्जनके पूर्व उनके हृदयस्पर्शी मर्म भरे उद्‌गार हैं –

मस्तकपर वारि बिखेर, अहो! बोली वह सरितासे, प्रियतम!
''री बहिन! आज मैं आयी हूँ तेरे समीप रोने, प्रियतम!
देगी तू मुझे उरस्थलकी किञ्चित् शीतलता क्या? प्रियतम!
जल रहे प्राण-तन हैं मेरे, क्षणभर शीतल ये हों, प्रियतम!
मैंने तेरा अपराध किया, मैं गर्व भरी तब थी, प्रियतम!
साँवरको नित्य साथ पाकर फिरती इठलाती थी, प्रियतम!
अधिकार नील तनपर करके मेरी मति बौरायी, प्रियतम!
कितनी ही बार तुझे पदसे मैंने ठुकराया है, प्रियतम!
नीला श्रीमुख दृगमें रखकर तेरी परवाह न की, प्रियतम!
नीला कर अहो! कण्ठमें था, गिनती न तुझे मैं थी, प्रियतम!
नीले तन-सौरभसे माती आयी न पास तेरे, प्रियतम!
नीले तरुपर समुदित फलका रस पी न मिली तुझसे, प्रियतम!
नीले मुखका मधु रव सुनती, कल-कल न सुना तेरा, प्रियतम!
नीला था अङ्ग मिला, तेरी गोदी न सुहाती थी, प्रियतम!
नीले कर सेते थे पदको, सेवा न रुची तेरी, प्रियतम!
नीली वह अलकावलि हरती श्रमकण, भूली तुझको, प्रियतम!

मेरी निधि वह छिन गयी किंतु, हूँ अब भिखारिणी मैं, प्रियतम!
जो सत्य महारानी कल थी इन सब निकुञ्ज वनकी, प्रियतम!
मेरा सब गर्व चूर होकर, हूँ बनी आज दीना, प्रियतम!
सोने अब आयी हूँ तेरी शीतल गोदीमें ही, प्रियतम!
तू मुझे निराश नहीं करना, तू मुझे न ठुकराना, प्रियतम!
मुझसे जो हुआ अनादर है, उसको बिसार देना, प्रियतम!
अपनी अप्रतिम शीलतासे, निस्सीम अनुग्रहसे, प्रियतम!
तू ठौर मुझे देना अपने नीले, शीतल उरमें, प्रियतम!

* * * * *

शिमलापालकी यात्रा

सन् १९६० के मार्च मासमें पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) की आँखोंके मोतियाबिन्दका ऑपरेशन बाँकुड़ामें हुआ। उस अवसरपर पूज्य बाबूजी, पूज्या माँजी और पूज्य बाबा बाँकुड़ा गये थे। परम सम्मान्य श्रीजयदयालजी डालमिया भी साथ हो लिये थे। उनकी आँखका ऑपरेशन करनेवाले डाक्टर साहब भी उसी गाड़ीमें साथ गये थे। ऑपरेशनका कार्य जब भली प्रकारसे पूर्ण हो गया तो कुछ लोगोंके मनमें शिमलापाल चलनेकी बात उभरने लगी और जानेका कार्यक्रम भी बन गया।

यहाँ शिमलापालका थोड़ा परिचय देना आवश्यक लग रहा है। शिमलापाल बाँकुड़े जिलेके भीतरी भागमें एक छोटा-सा ग्राम है, जो बाँकुड़ासे २४ मील दूर पड़ता है। यह वही शिमलापाल ग्राम है, जहाँ अँग्रेजी सरकारने बाबूजीको इक्कीस मासतक नजरबन्द रखा था। बाबूजी योगिराज अरविन्दकी तरह पहले राजनैतिक कार्योंमें भाग लिया करते थे। भारतसे अँग्रेजी राज्यकी सत्ताको उखाड़ फेकनेके लिये बाबूजीका सक्रिय सहयोग क्रान्तिकारियोंको प्राप्त था। क्रान्तिकारियोंने रोड्डा एण्ड कम्पनीसे कारतूस और पिस्तौलकी पेटियाँ, जो जर्मनीसे आयी थीं, उनको गायब कर दिया और उनमेंसे कुछ पेटियाँ बाबूजीने अपने यहाँ छिपाकर रखी थीं। बाबूजी बिना किसी भयके देश-सेवाके कार्यक्रमोंमें भाग लिया करते थे। गुप्त समितिमें भाग लेनेके कारण तथा क्रान्तिकारियोंके मुकादमोंकी पैरवीमें सहयोग देनेके कारण बाबूजीका नाम पुलिसकी डायरीमें नोटकर लिया गया था। पुलिस बाबूजीकी गतिविधिका निरीक्षण करने लगी। किसीका सक्रिय सहयोग

भला कैसे छिपा रह सकता है ? बन्दी होनेके एक मास पूर्व बाबूजीको सूचना मिल गयी थी कि सरकार उन्हें बन्दी बनानेके लिये प्रयत्नशील है। सूचना मिलनेके बाद भी बाबूजी न तो कहीं भागकर छिपे और न अपने कार्यक्रमोंसे विरत हुए। अभी इनका विवाह हुए तीन मास भी नहीं हुए थे कि २० जुलाई १९१६ को अँग्रेजी सरकारने बाबूजीको गिरफ्तार लिया। पहले तो सरकारने कुछ दिन जेलमें रखा, फिर शिमलापाल ग्राममें नजरबन्द कर दिया। इक्कीस मासकी नजरबन्दीके बाद मुक्ति मिली और बाबूजीको सरकारी आदेशके अनुसार बंगाल छोड़ देना पड़ा।

शिमलापाल ग्रामका नाम बाबूजीके जीवनके साथ जुड़ा हुआ है। राजनैतिक जीवन तथा आध्यात्मिक जीवन, दोनोंकी दृष्टिसे शिमलापालका महत्त्व है। राजनैतिक जीवनके बाद आध्यात्मिक जीवनका शुभारम्भ शिमलापालसे ही होता है। इसी शिमलापालकी नजरबन्दीमें बाबूजीने कठोर साधना की और उनकी आरम्भिक साधनाका स्वरूप था नामका जप, ध्यानका अभ्यास और ग्रन्थोंका स्वाध्याय।

बाबूजीकी नजरबन्दीके दिनोंमें शिमलापाल जानेके लिये पक्की सड़क नहीं थी। बैलगाड़ीसे ही यात्रा करनी होती थी। उन दिनों पूज्य श्रीसेठजीको बाबूजीके पास जो डाक चिट्ठी या अन्य आवश्यक सामान भेजना होता था, वह सब बाँकुड़ासे उधर जानेवाली बैलगाड़ीसे वे भेजा करते थे। अब तो सड़क बन गयी है। सभी लोग मोटरसे शिमलापाल गये।

शिमलापाल पहुँचते ही एक बड़ा भावपूर्ण दृश्य देखनेको मिला। आज बाबाका हृदय बड़ा उमड़ रहा था। वहाँ पहुँचते ही बाबा वहाँके चैराहेकी धूलमें लोटने लगे। बाबाका सारा शरीर धूल-धूसरित हो उठा। बाबाके अन्तरका आह्लाद उनके नेत्रोंमें उमड़ रहा था। इसके बाद बाबूजी वहाँकी जिस नदीमें प्रतिदिन स्नान किया करते थे, वहाँ सभीने स्नान किया।

सरकारने बाबूजीके रहनेका प्रबन्ध श्रीअधरचन्द मण्डलके घरपर कर रखा था। बाबूजीने श्रीअधरचन्द्रजीके घरमें ही इक्कीस मास बिताये थे। सब लोग उनके घरपर गये। उस घरकी जिस कोठरीके दीवालपर बाबूजीने 'श्रीनृत्य गोपाल' लिख रखा था, वह इतने वर्षोंके बाद भी उसी प्रकार लिखा हुआ था। बाबूजीने वह 'श्रीनृत्य गोपाल' दिखलाया। नजरबन्दीके मध्यमें सरकारने बाबूजीके पास पत्नीको जाने और रहनेकी अनुमति दे दी थी और वे आकर रही भी थीं। इस यात्रामें पूज्या माँ भी साथ-साथ आयी थी। वे बताने लगी कि यहाँ रसोई बनती थी, यहाँ स्नान होता था और यहाँ विश्राम होता था। यह वर्णन सुनकर बड़ा अच्छा लग

रहा था। पूज्या माँजीने वे सब प्रसंग सुनाये कि कैसे फूलोंके पौधे लगाये तथा कैसे लोगोंकी होमियोपैथिक चिकित्सा की जाती थी और उससे स्थानीय लोगोंको कितना लाभ हुआ। एक गूँगा और बहरा व्यक्ति होमियोपैथिक दवाके लिये आया और जिद्द करके बैठ गया कि वह दवा लिये बिना नही जायेगा। बात टालनेके लिये उसके लक्षण अफीमचीकी तरह देखकर बाबूजीने उसको होमियोपैथिक 'ओपियम' दे दिया। भगवानकी ऐसी कृपा हुई कि उसीसे वह बोलनेमें और सुननेमें सक्षम हो गया। इस घटनासे बाबूजी सभीके लिये बड़े आदरणीय-विश्वसनीय बन गये थे।

शिमलापालमें एक जगह धान सूख रहा था। बाबाने उसको भाड़में भुनवाया। उस धानकी लाईको बाबाने अपनी झोलीमें भरकर ले लिया। जितने लोग साथमें थे, सबको एक-एक दाना प्रसादके रूपमें दिया। जिसका धान था, बाबाने उसे धानके मूल्यसे कई गुना अधिक मूल्य दिलवाया। शिमलापालसे विदा होते समय सभीने उस पवित्र भूमिको बार-बार प्रणाम किया।

* * * * *

षोडश गीत

श्रीराधा-माधवके दिव्य प्रेमके रस-सागरकी सुधामयी लहरोंपर कभी संतरण करना और कभी अतल तलमें डूब जाना, यही बाबूजीके आन्तरिक जीवनका स्वाभाविक स्वरूप बन गया था। स्थिति साधारण हो अथवा असाधारण, श्रीराधा-माधवके लीला-रसका आस्वादन करना, वह भी जगतकी दृष्टिसे स्वयंको बचाते हुए निरन्तर आस्वादन करना, उनके सागरसे गम्भीर व्यक्तित्वका सुगुप्त अंग था। रस-सागरमें लहराते-लहराते जब रसानुभूति प्रगाढ़ हो जाती, तब तो उनके सब लौकिक कार्य-व्यापार हठात् बंद हो जाते और शरीर निस्स्पन्द हो जाता। इस मूर्तिवत् निस्स्पन्दावस्थामें एक मात्र श्वास-प्रश्वासके अतिरिक्त चेतनाके कोई अन्य लक्षण बाहर दिखलायी नहीं देते थे। इस स्थितिमें बाबूजी, केवल थोड़ी देरके लिये नहीं, घंटों-घंटों निश्चल-निश्चेष्ट पड़े रहते थे। अपनी इस गम्भीर भाव-समाधिकी स्थितिको लोगोंसे छिपाये रखनेके लिये बाबूजीने एक अच्छी शब्दावली गढ़ ली थी कि 'माथा खराब' हो गया है। भाव-समाधिकी स्थितिमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी उत्तरोत्तर अभिवृद्ध होनेवाली एक-से-एक सुन्दर छवि, एक-से-एक मधुर उद्‌गार, एक-से-एक ललित लीलाएँ, एक-से-एक

अनुपम दृश्य बाबूजीके समक्ष प्रत्यक्ष होते और उन अनेकानेक दिव्यातिदिव्य प्रसंगोंमेंसे किसी-किसीको बाबूजी स्वान्तः सुखाय शब्द-बद्ध कर लिया करते थे। यह शाब्दिक अभिव्यक्ति कभी गद्यमें और कभी पद्यमें होती थी। अपने इन स्व-रचित पदोंको एक नोटबुकमें बाबूजी लिख लिया करते थे और वे इस नोटबुकको सदा छिपा कर रखते थे। यह नोटबुक एक सुगुप्त मंजूषा थी कतिपय दिव्य-सरस-प्रत्यक्ष प्रसंगोंकी।

सम्भवतः सन् १९६० ई. के श्रीराधाष्टमी-महोत्सवकी बात है। महोत्सवकी विशद तैयारी चल रही थी। प्राकट्य-दिवसके चार-पाँच दिन पहले एकान्तके क्षणोंमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी कोई अनूठी लीला बाबूजीके समक्ष आविर्भूत हुई। आत्म-निवेदनके भावपूर्ण दृश्योंका दर्शन एवं रसपूर्ण उद्‌गारोंका श्रवण तो पहले भी हुआ था, परंतु आजकी झाँकी तो अनिर्वचनीय रूपसे अभूतपूर्व थी। आज एक दूसरेके प्रति पूर्ण आत्म-निवेदन करते हुए उन महाभाव-रसराज श्रीराधा-माधवके पारस्परिक संलापकी वह झाँकी सर्वथा लोकोत्तर तथा सीमातीत मधुर थी। उस असाधारण माधुर्यके रससे बाबूजीका तन-मन अत्यन्त सराबोर था, अत्यधिक विभोर था। उस असाधारण स्थितिके किंचित् शमित होनेपर बाबूजीने अपनी नोटबुक उठायी तथा लिखे गये पदोंके संग्रहमेंसे उन्होंने सोलह पद अपनी रसानुभूतिके अनुरूप छाँट लिये, आठ पद प्रेम-प्रतिमा प्रिया श्रीराधाके भावोद्‌गारोंके और आठ पद प्रेम-मूर्ति प्रियतम श्रीकृष्णके भावोद्‌गारोंके। छाँटे हुए सोलह पदोंका क्रम उस दृष्ट झाँकीके अनुसार इस रीतिसे सजाया गया कि सर्वप्रथम पदमें प्रियतम श्रीकृष्ण अपने प्रेमोद्‌गार प्राणाराध्या श्रीराधाके प्रति निवेदित करते हैं और तदुपरान्त द्वितीय पदमें प्रियतमा श्रीराधा अपने प्रेमोद्‌गार प्राणाराध्य श्रीकृष्णके प्रति। प्राण-प्रिया श्रीराधाके प्रेमोद्‌गारको सुनकर प्राण-प्रियतम श्रीकृष्ण तृतीय पदमें पुनः प्रेमोद्‌गार व्यक्त करते हैं और चतुर्थ पदमें पुनः प्रेम-प्रतिमा श्रीराधा आत्म-निवेदन करती हैं। इस क्रमसे दोनों परम प्रेमी-प्रेमास्पद एक दूसरेके प्रति अपने-अपने प्रेमोद्‌गारोंका पारस्परिक निवेदन करते हैं। इन सोलह पदोंमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवका पारस्परिक वार्तालाप है, जिसमें काम-गन्ध-शून्य तत्सुखमयी प्रीतिके अनूठे रूपका दर्शन मिलता है। निवेदित प्रेमोद्‌गारोंमें भावका स्तर क्रमशः गहनसे गहनतर, गहनतरसे और अधिक गहनतर होता चला जाता है। अधिकाधिक गहनतर होते-होते अन्तिम सोलहवें पदमें परमोज्ज्वल प्रीतिका ऐसा चिन्मय स्वरूप उद्भासित हो

उठता है, जो 'महाभाव'की स्थितिका दुर्लभ उदाहरण है।

उस श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके अवसरपर वृन्दावनधामसे कई भक्त गायक भी पधारे थे। बाबूजीके निर्देशानुसार एक विशिष्ट कार्यक्रम आयोजित हुआ। प्रेम-प्रतिमा श्रीराधाका एक अति विशाल चित्र एक स्थानपर खड़ा कर दिया गया तथा कुछ हटकर दूसरे स्थानपर खड़ा कर दिया गया प्रेम-मूर्ति श्रीकृष्णका भी एक वैसा ही अति विशाल चित्र। एक गायकको नन्दनन्दन श्रीकृष्णके चित्रके पीछे तथा एक गायकको वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके चित्रके पीछे बैठा दिया गया। कार्यक्रमके आरम्भ होनेपर सोलह पदोंके बंधानके अनुसार पहले श्रीकृष्ण-चित्रके पार्श्व-गायकको पद-गान करना था, इसके बाद श्रीराधा-चित्रके पार्श्व-गायकको। इस प्रकार बारी-बारीसे सोलह पदोंका गायन होना था।

निर्धारित समयपर बाबूजी कार्यक्रममें पधारे तथा बाबूजीके साथ-साथ बाबा भी। भक्तगण तो कार्यक्रममें पहलेसे ही विराजित थे। बाबा-बाबूजीके आसन ग्रहण करनेपर सोलह गीतोंके गायनका कार्यक्रम आरम्भ हुआ। पूर्व-प्रदत्त निर्देशके अनुसार एक-एक करके सोलह पद गाये गये। सोलहों पदोंके गायनसे सुख तो सभी उपस्थित भक्तोंको मिला, पर बाबाकी स्थिति तो दूसरी ही थी। 'थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह'। इन पदोंको सुनकर बाबा तो स्तम्भित रह गये। हीरेकी पहचान और परख जौहरी ही कर पाता है। विवेचनातीत एवं मात्र-भाव-गम्य भाव-राज्यके अचिन्त्य-अनिर्वचनीय उच्च भावोंकी सरल भाषामें इतनी सरस अभिव्यक्तिको देखकर बाबाके आनन्द और आश्चर्यकी सीमा नहीं थी।

सोलह गीतोंके गायनका कार्यक्रम पूर्ण हो गया और उस वर्षकी श्रीराधाष्टमीका महोत्सव भी सानन्द सम्पन्न हो गया। बादमें बाबाने बाबूजीसे कहा – वन्दना और पुष्पिकाकी आप और रचना कर दें। सोलह पदोंके आरम्भमें वन्दना और अन्तमें पुष्पिकाको जोड़ दें। वन्दना-पुष्पिकासे इन सोलह पदोंको सम्पुटित करके आप इसे छपवा दें और फिर मुझे दे दें।

बाबूजीने वैसा ही किया। वन्दनाके पाँच दोहोंकी और पुष्पिकाके पाँच दोहोंकी रचना करके बाबूजीने सोलह पदोंके आरम्भमें वन्दनाको तथा अन्तमें पुष्पिकाको जोड़ दिया। वन्दना-पुष्पिका-सहित सोलह पदोंकी पुस्तिकाका नाम रखा गया 'श्रीराधा-माधव-रस-सुधा'। गीताप्रेससे प्रकाशित इस पुस्तिकाको लोग षोडश गीतके नामसे ही जानते हैं।

बाबाके मनमें रह-रहकर ऐसे भाव उठ रहे थे कि यह कैसा संयोग

घटित हो गया कि अत्यन्त दुर्लभ वस्तु आज हस्तगत है। भगवत्कृपाका यह अप्रतिम उदाहरण है। जगतके लोग भले ही षोडश गीतकी गरिमाको नहीं समझ पायें, परंतु इससे क्या हुआ? वस्तुका वस्तु-गुण समझ या सम्मानकी अपेक्षा नहीं रखता। अपने वस्तु-गुणके कारण यह षोडश गीत तो स्वयंकी गरिमासे गरिमान्वित है। बाबा यही चाहते थे कि इस षोडश गीतका अधिक-से-अधिक प्रचार हो, प्रचार हो इसलिये कि जगतको ज्ञात हो सके कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णका प्रेम कितना शुचितम, कितना अनुपम, कितना दिव्य, कितना समर्पणपूर्ण है और प्रचार हो इसलिये भी कि प्रेमके इस आदर्श रूपको अपने सामने रखकर प्रेम-पथके साधक अपनी साधनामें प्रवृत्त हों तथा दिव्य भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कर सकें।

प्रेम-पथके साधकोंको विशेष प्रकाश मिले तथा प्रेमासव-छके रसिकोंको विशेष सुख मिले, इस दृष्टिसे बाबाने षोडश गीतके पाठको बड़ा महत्त्व प्रदान किया। मध्य रात्रिके उपरान्त दो बजेसे लेकर साढ़े चार बजेतककी समयावधिके सम्बन्धमें ऐसा कहा जाता है कि यह दिव्य वेला सिद्ध संतोंके गुप्त रूपसे विचरण करनेकी, अधिकारी-जनोंपर अनुग्रहकी वर्षा करनेकी तथा एकाग्र मनसे ईश्वरका स्मरण करनेकी होती है। बाबाके मनमें यह स्फुरणा उदित हुई कि कोई मुझे इस दिव्य वेलामें दो बजेसे लेकर साढ़े-चार बजेतक अर्थात् कुल अढ़ाई घंटेतक प्रतिदिन षोडश गीत सुनाया करे। भाई श्रीनटवरलालजी गोस्वामी (साधु श्रीकृष्णप्रेमजी महाराज) को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ और कई वर्षोंतक वे नित्य-निरन्तर निष्ठापूर्वक निशान्त वेलामें बाबाको षोडश गीत सुनाते रहे। इस प्रसंगसे प्रेरणा लेकर कई साधकोंने इस दिव्य वेलामें अढ़ाई घंटेतक षोडश गीतके पाठका नित्य-नियम ले रखा है।

षोडश गीतके प्रचारके लिये बाबाने अनेक कार्यक्रम अपनाये तथा उनको मूर्त रूप प्रदान करनेके लिये अपूर्व प्रयास किया। भारतके कोने-कोनेमें षोडश गीत पहुँच सके, इसके लिये बाबाने अनेक विद्वानोंद्वारा षोडश गीतका कई भाषाओंमें अनुवाद करवाया। संस्कृत, उड़िया, तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, सिंधी, उर्दू आदि अनेक भाषाओंमें षोडशगीतका अनुवाद हुआ ही; अँगरेजी, जर्मन, फ्रेंच तथा रशियन भाषाओंमें भी अनुवाद करवाया गया, जिससे षोडशगीतका प्रचार भारतकी सीमाके बाहर भी हो सके। षोडशगीतका पद्यात्मक अनुवाद संस्कृत भाषामें

हुआ, जिससे अहिन्दी भाषा-भाषी लोग, जो संस्कृत समझते हैं, वे अर्थ समझते हुए षोडशगीतका गायन कर सकें और प्रीति-रसकी मधु धारामें बह सकें।

विदेशी भाषाओंमें हुए अनुवादका भारतके बाहर सम्मान भी हुआ। अमेरिकामें कैलिफोर्नियाके विलयर-लेक-हाई-लैंड स्थित दी फ्री काम्युनियन चर्च (THE FREE COMMUNION CHURCH) में ईसाई मतावलम्बी बन्धु स्वयं-प्रेरणासे षोडशगीतके अँगरेजी अनुवादका उपयोग अपनी उपासनामें करते हैं। अपने एक पत्रमें इन ईसाई बन्धुओंने षोडशगीतके रचयिताके जीवनके बारेमें जिज्ञासा व्यक्त की थी। इसी पत्रमें उन्होंने बाबूजीके 'गोपी प्रेम' नामक पुस्तकके अँगरेजी अनुवादके मुद्रणकी अनुमति प्राप्त करनी चाही थी। इसी प्रकार जर्मनीके एक प्रकाशकने अपने देश जर्मनीमें ही षोडशगीतके जर्मन अनुवादको स्वेच्छासे पुनः मुद्रित किया।

षोडशगीतका जिस प्रकार अनेक भाषाओंमें गद्यात्मक-पद्यात्मक अनुवाद हुआ, उसी प्रकार उसपर व्याख्यात्मक साहित्य भी लिखा गया। बाबाने पद्यात्मक व्याख्याको लिखवानेका शुभारम्भ ग्यारहवें पदसे किया है, षोडशगीतके प्रारम्भसे नहीं। सर्वप्रथम ग्यारहवें पदकी ही व्याख्या क्यों की गयी, इसके पीछे एक विशेष कारण है, जिसका उल्लेख आगे आयेगा। चार-चार पंक्तियोंका एक-एक चौपदा, इस प्रकारके अढ़ाई सौ चौपदोंमें बाबाने व्याख्या लिखवायी है। बाबाके मनमें जितने भाव उमड़ते थे, वे सब भाव इन अढ़ाई सौ चौपदोंमें नहीं सिमट पाये। एक बार बाबाने बताया था कि यदि अढ़ाई सौ चौपदोंकी एक इकाई मान ली जाये तो इस प्रकारकी सत्तरह-अट्ठारह इकाइयोंकी रचना हो सकती थी। ग्यारहवें पदकी व्याख्या हो जानेके बाद सम्पूर्ण षोडशगीतकी व्याख्या करनेकी बात बाबाके मनमें उभरी, अतः वे आरम्भसे व्याख्या लिखवाने लगे। षोडशगीतके आरम्भमें वन्दनाके पाँच दोहे हैं। शायद दो-तीन दोहोंकी व्याख्या लिखवायी होगी कि फिर लिखवाना स्थगित हो गया। बाबूजीका स्वास्थ्य अत्यधिक खराब हो जानेसे बाबाका अधिक समय उनकी परिचर्या तथा चिकित्साकी सँभालमें जाने लगा। जब बाबूजी नित्य-लीलामें लीन हो गये, तब तो उसके बाद लिखवानेका

भाव ही सर्वथा विसर्जित हो गया।

षोडशगीत-मन्दिरकी स्थापना करना बाबाकी अपनी सूझ थी। षोडशगीतके अट्ठारह पदोंको बाबाने एक विशेष धातुके पत्रपर उत्कीर्ण करवाया। साढ़े-अट्ठारह इंच लम्बे तथा ग्यारह इंच चौड़े, इस आकारके तेरह धातु-पत्रोंपर बड़ी कलात्मक रीतिसे सम्पूर्ण षोडशगीत खुदवाये गये। उत्कीर्ण होकर जब ये षोडशगीत गोरखपुर आये तो इनको बाबूजीके कमरेमें ससम्मान विराजित किया गया। प्रत्येक धातु-पत्रको अलग-अलग पीत वस्त्रसे आवेष्टित किया गया। बाबूजीके पावन कमरेसे धातु-पत्रोत्कीर्ण षोडशगीतकी शोभा-यात्रा निकली। पीत-वस्त्र-आवेष्टित एक-एक धातु-पत्र एक-एक भक्तके शीशपर विराजित था। इस शोभा-यात्रामें युगल रसिक संत बाबा-बाबूजी साथ-साथ चल रहे थे। हरिनाम संकीर्तनके मधुर स्वरसे तथा वाद्योंके मधुर नादसे सारा वातावरण गुञ्जित हो रहा था। बाबूजीके कमरेसे यह शोभा-यात्रा चलकर गीतावाटिकाके समक्ष स्थित नयी कोठीकी छतपर उस कमरेमें आयी, जहाँ इन षोडशगीत-धातु-पत्रोंको पधराना था। अति सुन्दर काष्ठ-आलमारीमें षोडशगीतके तेरह धातु-पत्रोंको आदरसहित प्रस्थापित किया गया तथा इनका सविधि पूजन हुआ। षोडशगीत-मन्दिरमें इन धातु-पत्रोंकी विग्रह रूपमें प्रतिष्ठा सम्भवतः सन् १९६३ ई. में हुई। कुछ भक्तोंने ताम्र-पत्रोंपर उत्कीर्ण कराकर तथा विग्रह रूपमें पधराकर षोडशगीतको अपनी नित्य अर्चनामें स्थान दे रखा है।

कई स्थानोंपर षोडशगीतको संगमरमर पत्थरपर खुदवाकर दीवालोंपर लगवाया गया। भारतके चार प्रधान धामोंमेंसे पूर्व दिशामें स्थित श्रीजगन्नाथपुरीके मुख्य मन्दिर श्रीजगन्नाथमन्दिरमें उड़िया अनुवाद सहित मूल पद लगे हुए हैं। इसी प्रकार वृन्दावनके अति विख्यात श्रीराधारमणमन्दिरमें ब्रजभाषा अनुवाद सहित मूल पद लगे हुए हैं। बाबाके प्रयाससे ही उक्त मन्दिरोंके अधिकारियोंसे षोडशगीतके संगमरमर पत्थरोंको लगवानेकी अनुमति प्राप्त हो सकी। इसके अतिरिक्त और भी कई स्थानोंपर ये पद पत्थरपर खुदवा करके लगवाये गये। बाबा जहाँ श्रीगिरिराजजीकी नित्य परिक्रमा करते थे, वहाँ भी घेरेकी दीवालपरके पत्थरपर ये षोडशगीत उत्कीर्ण हैं।

श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके अवसरपर षोडशगीतको बाबाने जब सर्वप्रथम सुना था, तब श्रीराधा एवं श्रीकृष्णके विशाल चित्रोंके पीछे बैठे हुए पार्श्व गायकोंने गाकर सुनाया था। इस गायनको और भी अधिक स्वाभाविकता प्रदान करनेके लिये, इतना ही नहीं, इस षोडशगीतमें 'प्राण-प्रतिष्ठा' कर देनेके लिये बाबाने सन् १९६३ ई. में ही एक और विशेष आयोजन किया। बाबाकी रुचिके अनुसार वृन्दावनधामके श्रीश्रीरामजी शर्माकी रासमण्डलीको आमन्त्रित किया गया और उनकी रासमण्डलीके द्वारा षोडशगीतकी बड़ी सुन्दर रासलीला अभिनीत हुई। 'प्राण-प्रतिष्ठा' की यह पद्धति बड़ी अद्‌भुत है और अपने ढंगकी अकेली है। इस प्रकारसे प्राण-प्रतिष्ठाका विधान तो पहली बार ही देखने-सुननेको मिला। जब कोई नया मन्दिर बनता है तो उसमें नवीन मूर्ति स्थापित की जाती है और फिर शास्त्रानुमोदित विस्तृत पूजन-प्रणालीके द्वारा उसमें भगवत्ताकी प्रतिष्ठा की जाती है, जिससे वे विग्रह भगवद्‌विग्रहके रूपमें जन-जन द्वारा पूजित हो सकें और भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण कर सकें। इसी प्रकार बाबाने षोडशगीतकी रासलीलामें चन्द्रिका एवं मोरमुकुट-मुरली-धारी श्रीप्रिया-प्रियतम द्वारा इन पदोंका गायन करवा करके प्राण-प्रतिष्ठाका विधान ही पूर्ण किया है। यदि वह विधान शास्त्रानुमोदित है तो यह विधान संतानुमोदित है। परम सिद्ध संत बाबूजीकी कृति होनेसे ये षोडशगीत स्वतः सिद्ध पद हैं। इन पदोंमें बाबूजीकी परम सिद्ध वाणी है, अतः इस प्रकारके विधानकी कोई आवश्यकता नहीं थी, मात्र जन-जनकी आस्थाको परिपुष्ट करनेके लिये बाबाने इस विधानका आश्रय लिया।

षोडशगीतकी सुन्दर रासलीलाका क्रम चार दिनतक चला। रासलीला-स्थलीपर चारों दिन दीपावली मनायी गयी। चतुर्दिक् पथको वन्दनवारसे सजाया गया था। पथके दोनों ओर गुलालसे चौक पूरे गये थे और दोनों ओर शुद्ध घृतके शत-शत दीपक जलाये गये थे। वृक्षोंकी-पौधोंकी डाल-डालमें और प्रसरित लताओंकी शाखाओंमें विद्युत प्रकाशकी झालरें लटक रही थीं, उनका टिमटिमाता हुआ रंग-बिरंगा प्रकाश बड़ा आकर्षक लग रहा था। प्रत्येक दिन चार-चार पदका गायन

हुआ। वन्दना और पुष्पिकाके पदोंका गायन तो सखियों एवं समाजियोंद्वारा हुआ, परंतु मूल पदोंका गायन श्रीप्रिया-प्रियतमके द्वारा हुआ। श्रीप्रिया अथवा श्रीप्रियतमके द्वारा पदका गान हो चुकनेके उपरान्त गोस्वामीपाद श्रीचिम्मनलालजीके द्वारा उन पदोंका अर्थ व्रजभाषामें कहा जाता था। लीला-मंचके सामनेका स्थान दर्शकोंसे तो भरा ही पड़ा था, परंतु इस रासलीलाके तो प्रधान रसिक दर्शक थे श्रीबाबा-बाबूजी। षोडशगीतकी रासलीलाके आरम्भ होनेपर जब श्रीप्रिया-प्रियतम हाव-भाव सहित ललित कण्ठसे षोडशगीतका पद गाते, उस समय मानो रसका सागर उमड़ने लगता। चार दिनतक ऐसा लगता रहा मानो नित्य धामकी निकुञ्ज लीला यहीं अवतरित हो उठी है। इन चारों दिनों एक खुमारी-सी दर्शकोंपर छायी रही। जब साधारण दर्शकोंकी यह स्थिति थी, तब अनुपम-रस-रसिक-युगल श्रीबाबा-बाबूजीका कहना ही क्या? भीतर-बाहर-सर्वत्र अनोखी सरसता परिव्याप्त हो रही थी। अपनी-अपनी पात्रताके अनुसार सभी रस-मग्न थे। सारा कार्यक्रम बड़ा सरस और स्वाभाविक लग रहा था। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि 'वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस'।

* * *

षोडशगीतसे सम्बन्धित एक विशेष प्रसंग बाबाके जीवनमें घटित हुआ, यहाँ उसका उल्लेख कर देना आवश्यक है, जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि षोडशगीतके ग्यारहवें पदको बाबा क्यों अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं? एक बारकी बात है कि बाबा अपने भाव-राज्यमें दिव्य महाभाव-श्रीराधाभावसे गहरे भावित थे। न जाने ऐसी कौन-सी बात भावराज्यमें घटित हो गयी थी कि बाबा 'मान'की स्थितिमें प्रतिष्ठित हो गये। बाबाके मनमें और नयनमें प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके प्रति घना उपालम्भ था। उपालम्भके भावोंमें लहराते हुए बाबा शौचालय गये। शौचालयकी ओर जाते समय और वहाँसे लौटते समय भी बाबा रह-रह करके प्राणप्रियतम व्रजेन्द्रनन्दनको घना उपालम्भ दे रहे थे, केवल मन-ही-मन नहीं, वे कभी-कभी बोल भी पड़ते थे। शौचालयसे आनेके बाद स्नान करके बाबाने अपने कुटीरमें

प्रवेश किया।

बाबाका कुटीर तो नितान्त निर्जन एवं नीरव स्थलपर है ही, पर उस कुटीरके भीतर एक और एकान्त कक्ष है। इस एकान्त कक्षमें किसीका प्रवेश नहीं। बाबाके निजी परिचारक श्रीभगतजी और श्रीरामस्नेहीजी अवश्य उस कक्षमें जाते हैं, पर वह भी केवल स्वच्छ करनेके लिये। इन दो निजी परिकरोंके अतिरिक्त अन्य किसीका भी प्रवेश उस कक्षमें है ही नहीं। इसी एकान्त कक्षमें पूजावाली एक चौकोर चौकी है, जिसपर बाबा बैठा करते थे। बाबाने कक्षके अन्दर ज्यों ही पैर रखा, बाबाने देखा कि उस पूजावाली चौकीपर षोडशगीत पुस्तिकाका ग्यारहवाँ पद खोलकर रखा हुआ है। यह देखकर बाबाके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। बाबा खड़े-के-खड़े रह गये। खड़े-खड़े बाबा चकित दृष्टिसे यही सोचने लगे कि षोडशगीत पुस्तिकाको खोलकर और उसका ग्यारहवाँ पद निकालकर यहाँ किसने रखा? इस कक्षमें किसीका भी प्रवेश नहीं है। कक्षमें प्रवेशका अधिकार केवल श्रीभगतजी और श्रीरामस्नेहीजीको है, परंतु वे दोनों ऐसा कर सकते नहीं, करनेकी वे सोच ही नहीं सकते। फिर ऐसा किसने किया? किसने इस ग्यारहवें पदको खोलकर चौकीपर रखा है?

बाबा मूर्तिवत् खड़े-खड़े बहुत अधिक उधेड़-बुनमें पड़े हुए थे। अधिकाधिक चिन्तनके साथ-साथ बाबाके मनकी उलझन अधिकाधिक बढ़ती चली जा रही थी। बहुत-बहुत सोचनेपर भी कोई समाधान नहीं मिल पा रहा था, तभी बाबाके सामने प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दन प्रकट हो गये। बाबासे उनकी दृष्टि चार हुई। वे बाबासे वीणा-विनिन्दित स्वरमें कहने लगे – प्राणाधिके! इस ग्यारहवें पदको देखो तो सही।

अब रहस्य, रहस्य नहीं रह गया था। सारी उलझन समाप्त हो गयी थी तथा अब बात स्पष्ट थी कि पूजावाली चौकीपर षोडशगीत पुस्तिकाका ग्यारहवाँ पद कैसे खुला रखा था। बाबाने उत्तर दिया – मैं क्या देखूँ?

बाबाके शब्दोंमें कुछ क्षोभ था। मनमें जो उपालम्भ था, उस भाव-प्रवाहकी क्षुब्धता बाबाके स्वरको आच्छादित किये हुए थी। बाबाके स्वरमें जितना क्षोभ था, प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके स्वरमें उतना

माधुर्य। बड़े मधुर स्वरमें मनुहार करते हुए प्राणप्रियतमने कहा – तनिक देखो तो सही।

प्राणप्रियतमके प्यारभरे अनुरोधको स्वीकार करना ही था। अनुरोधके अनुसार बाबा ग्यारहवाँ पद पढ़ने लगे – मेरा तन-मन सब तेरा ही, तू ही सदा स्वामिनी एक।

दिव्य राधा-भाव-भावित बाबाको ऐसा लगने लगा मानो इस पदके मिससे मेरे प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दन अपनी प्रीति-परवशता व्यक्त कर रहे हैं। इतना ही नहीं, अपना अनन्त प्यार उड़ेलते चले जा रहे हैं। पदका वाचन करते-करते बाबाके मनका सारा उपालम्भ तुरंत उड़ गया और पदके समाप्त होते-होते बाबाका सारा अस्तित्व ही उस दिव्य प्यारकी अनन्त लहरियोंमें बह चला।

पदके समाप्त होते ही बाबाने सरस हृदयसे और सजल नयनसे तुरंत गाया – हौं तो दासी नित्य तिहारी।

यह षोडशगीतका दूसरा पद है। अब थी न तो मानकी स्थिति और न उस स्थितिकी स्मृति। वहाँ तो अब उमड़ रहा था प्यारका अद्‌भुत सागर। बाबाके जीवन-कालमें जब भी दशमी तिथिको परिक्रमाके समय षोडशगीतका पाठ होता था, तो सम्पूर्ण षोडशगीतका पाठ हो जानेके बाद सबसे अन्तमें पुनः ग्यारहवें पदका, तदुपरान्त द्वितीय पदका पाठ किया जाता था। इन दोनों पदोंके पुनः पाठ किये जानेके पीछे हेतु यही था और है कि बाबाके जीवनके इस दिव्य प्रसंगके कारण इन दोनों पदोंका विशेष महत्त्व है और यही कारण था कि बाबाने व्याख्या लिखवानेके कार्यका आरम्भ ग्यारहवें पदसे किया।

षोडश गीतोंमें जिन भावोंकी अभिव्यक्ति हुई है, उन भावोंका उद्‌भव बाबूजीकी भाव-समाधिकी दशामें होनेके कारण षोडशगीतकी महिमा अनन्त है और बाबाके जीवनकी प्रत्यक्ष घटनासे सम्बद्ध होनेके कारण यह अनन्त महिमा अनन्तानन्त गरिमासे मण्डित हो गयी है। ऐसे महिमामय षोडशगीतका गायन-श्रवण, चिन्तन-मनन जितना ही हो, उतना ही उत्तम है, जिससे उस परमानन्दपूर्ण प्रेमकी दिव्य झाँकी मिल सके और उस परमानन्दपूर्ण प्रेमके दिव्य प्रदेशमें प्रवेश मिल सके।

*　　*　　*　　*　　*

गुरुजनों को वन्दन

पूज्य बाबूजी किसी कार्यसे कलकत्ता गये हुए थे। वापसी यात्राके समयका यह प्रसंग हावड़ा स्टेशनके प्लेटफार्मका है। बाबूजीके साथ बाबा गोरखपुर आ रहे थे। स्टेशनपर आनेके बाद बाबाको ट्रेनके वातानुकूलित डिब्बेमें बैठा दिया गया। प्लेटफार्मपर उन लोगोंकी बड़ी भीड़ थी, जो बाबूजी-बाबाको विदा करनेके लिये आये थे। आये हुए लोगोंमें धनी-गरीब, सभ्रांत-साधारण सभी प्रकारके लोग थे। उस भीड़को चीरकर कोई सामान्य वेष-भूषावाला व्यक्ति वातानुकूलित डिब्बेतक आनेकी बात सोच ही नहीं सकता था। जिसमें बाबा बैठे हुए थे, उस डिब्बेमें काँचके बड़े-बड़े शीशे लगे थे। अचानक बाबाकी दृष्टि दूर खड़े एक व्यक्तिपर पड़ी। वे थे बाबाके भाई। वे आयुमें बड़े थे और बाबाके लिये पूज्य थे। बाबा अपनी बर्थपरसे उठे तथा डिब्बेके दरवाजेकी ओर बढ़े। बाबाका दरवाजेसे नीचे उतरना सबके लिये बड़े कौतूहलका विषय हो गया कि बाबा क्यों उतरे हैं तथा किधर जा रहे हैं। बाबा उतरकर सीधे उनकी ओर बढ़ने लगे। सभीने बाबाके लिये मार्ग दे दिया। उनके पास जाकर बाबाने श्रीचरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। प्यारके मारे वे बड़े भाईजी कुछ बोल न सके, उनके नेत्र सजल हो गये। ट्रेनके चलनेमें अभी दस मिनट बाकी थे। बाबाने उनका हाथ पकड़ा और हाथ पकड़े-पकड़े वातानुकूलित डिब्बेकी ओर बढ़े।

बाबा उनको अपने साथ ले आये और वातानुकूलित डिब्बेमें बर्थपर बैठाया। वे (बड़े भाई) इतने अधिक भावाभिभूत हो गये थे कि बोल नहीं पा रहे थे। उनकी आँखोंसे आँसुओंका प्रवाह झर-झर बह रहा था। जबतक वे बर्थपर रहे, बाबा ही उनके सम्मानमें बोलते रहे। प्यारके आवेगमें बोलना उनके लिये असम्भव-सा हो रहा था, पर वत्सलतासे भरा हुआ उनका हाथ बाबाकी पीठपर फिर रहा था। बाबाका व्यक्तित्व चाहे जितना महान हो, वे भले एक सिद्ध संत हों, पर उनके लिये तो अपने छोटे भाई ही थे और वात्सल्याधिक्यमें उनकी फिरती हुई अँगुलियाँ तथा उनकी झरती हुई आँखें क्षण-प्रति-क्षण कह रही थीं – यह कितने गौरवकी बात है कि मेरा भाई अध्यात्म-जगतका एक उज्ज्वल रत्न है और महान होकर भी वह मुझे नहीं भूला नहीं है। मेरा भाई अधिक-से-अधिक आध्यात्मिक उन्नति करे, समुन्नत होते-होते सर्वोच्च सफलता प्राप्त करे, यही मेरे अन्तरकी अन्तरतम मंगल

कामना है।

दस मिनटके बीतते क्या देर लगती है। इंजनके सीटी देनेपर वे ट्रेनसे नीचे उतरे। बाबाने उनका पुनः अभिवादन किया।

इस प्रसंगको सुनाकर बाबा कहा करते थे – बड़ोंका आशीर्वाद जीवनमें बड़ा काम करता है। उनके आशीर्वादसे जीवनके कठिनतम कार्य सरल हो जाते हैं। गुरुजनोंके प्रति किये गये वन्दनने ही महाभारतके युद्धमें युधिष्ठिरको विजय दिला दी। अपनी मर्यादा, अपनी परम्परा, अपने सदाचार, अपने शिष्टाचारको कभी नहीं छोड़ना चाहिये। पश्चिमी सभ्यताके प्रभावमें आर्य-परम्परादिकी जो अवहेलना आज हो रही है, वह तो आत्मघाती नीति-रीति है।

* * * * *

कमली मैया

कमली मैयाका बाबाके प्रति पुत्र-भाव था। वह बड़ी भोली थी, बड़ी सरल थी। सचमुच, उसे छल-छद्म-छिद्र छू नहीं गया था। उसकी बाबाके प्रति ऐसी श्रद्धा, ऐसी आत्मीयता उमड़ी कि वह अपने पुत्रोंको छोड़कर, परिवारकी सुख-सुविधाको छोड़कर बाबाके पास यहीं गीतावाटिकामें ही रहने लग गयी।

गीतावाटिकामें रहते समय कमली मैयाने एक नियम-सा बना लिया था। दोपहरके समय जब बाबा शौचके लिये जाते तो वह देखनेके लिये आ जाती। उस समय बाबा अपनी पुरानी कुटियामें रहते थे। पुरानी कुटियासे मेरा प्रयोजन उस कुटियासे है, जिसमें बाबा, बाबूजीके महाप्रस्थानके पूर्व रहा करते थे। बाबूजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके बाद बाबाने उस कुटियामें प्रवेश किया ही नहीं। फिर तो बाबा एक वृक्षके नीचे खुली कुटियामें रहने लगे। कमली मैया वाली बात उस समयकी है, जब बाबाका निवास पुरानी कुटियामें था। इस पुरानी कुटियाके पास ही २० –२५ गजकी दूरीपर एक टिनशेड था। कमली मैया प्रतिदिन दोपहरके समय आती और इसी टिनशेडमें बैठ जाती। बाबा शौचके लिये कुटियासे कब निकलेंगे, यह समय निश्चित तो था नहीं। वे निकलते थे कभी बारह बजे, कभी साढ़े-बारह बजे और कभी एक बजे, पर कमली मैया बारह बजेके पहले ही आकर बैठ जाती और तबतक बैठी रहती, जबतक बाबा शौचके लिये चले नहीं जाते। बाबाको यह

पता भी नहीं रहता था कि वह आकर बैठी है। बाबा अपनी कुटियासे निकलते, आँखें नीची किये हुए चलते, धीरे-धीरे चलते हुए शौचालय जाते और फिर शौचादिसे निवृत्त होकर अपनी कुटियामें लौट आते। एक दिन बाबाने देख लिया कि कमली मैया बैठी है। बाबाने उससे पूछा तो पता चला कि वह नित्य दोपहरके समय दर्शन करनेके लिये आती है। यह सुनकर किंचित् उपालम्भ देते हुए बाबाने कहा – अरी मैया! यदि तू मुझे तनिक भी आभास दे देती कि तू नित्य मेरे लिये आकर बैठती है तो मैं दृष्टि उठाकर तुझे देख लिया करता।

तब कमली मैयाने कहा – बाबा! मैं केवल तुम्हारे लिये ही थोड़े आती हूँ। मैं तो एक और मतलबसे आती हूँ।

बाबाने पूछा – तेरा और क्या मतलब है, जिसके लिये तू आती है?

वह नितान्त-निरीह-मति अत्यधिक-सरल-हृदया मैया अपने सहज ढंगसे कहने लगी – बाबा! जब तुम शौचके लिये जाते हो न, तब तुम्हारे पीछे-पीछे बड़ा सुन्दर-सा, बड़ा सलोना-सा एक छोटा नीला बालक चलता रहता है। उसके सिरके लहरदार बाल, उसके पैरोंकी पायजेब, उसके चलनेका ढंग, उसके शरीरका रंग, उसके कमरकी तागड़ी, उसके हाथका हिलना, ये सब आँखोंको- कानोंको बड़े ही प्यारे-प्यारे लगते हैं। मैं तो उस नन्हें-से बालकको देखनेके लिये आती हूँ।

कमली मैयाकी बात सुनकर बाबा तो चकित रह गये। यह तो एक उदाहरण है। उसको ऐसी अनुभूतियाँ सदा ही होती रहती थीं। स्वयं मुझसे उसकी बात हुई है। एक बारकी बात है। दोपहरके समय वह टिनशेडके नीचे बैठी थी। मैंने उससे विनोद करना आरम्भ कर दिया – मैया! तू आजकल कृपण हो गयी है, कुछ खिलाती-पिलाती नहीं।

कुछ देरतक ऐसे ही विनोद चलता रहा, फिर पारस्परिक बातचीतने सरस रूप ले लिया। वह मुझसे कहने लगी – बेटा! देख! यह पेड़ है न! इस पेड़के पत्ते-पत्तेमें राधाकृष्ण हैं। वे तुमको दिखलायी नहीं देते क्या? मुझे तो दीख रहे हैं।

* * *

कमली मैयाकी एक बेटी थी आशा। प्रयत्न करनेके बाद भी आशाकी

सगाई कहीं हो नहीं पा रही थी। एक दिन उसने बाबासे कहा – बाबा! आशाकी सगाई नहीं होगी?

बाबाने उत्तर दिया – मैं तेरा बेटा अभी जीवित हूँ, तब तू क्यों चिन्ता करती है?

बाबाके मुखसे ऐसे शब्द निकलते ही कमली मैयाने कहा – अब मैं बेफिक्र हो गयी।

और सचमुच ही वह निश्चिन्त हो गयी। इसके बाद विधिने ऐसी बात बनायी कि इस प्रकार आश्वासन दिये जानेके लगभग चार-पाँच दिन बाद ही आशाबाईकी सगाई गाजीपुर शहरमें हो गयी। सगाई हो जानेके कुछ दिन बाद विवाहकी तिथि भी निश्चित हो गयी। आशाबाईका विवाह गोरखपुरमें नहीं, कलकत्तेमें हुआ था। विवाहकी तिथि समीप आनेपर कमली मैयाने बाबासे एक दिन कहा – बाबा! क्या आप आशाके विवाहमें नहीं आइयेगा?

बाबाने कहा – मैया! मैं आऊँगा तो जरूर, पर मैं यह नहीं कह सकता कि तू मुझे देख पायेगी अथवा नहीं। यदि तेरे पास 'वे आँखें' होंगी तो मुझे देख भी लेगी।

सौभाग्याकांक्षिणी आशाका विवाह हुआ कलकत्तेमें और बाबा थे गोरखपुरमें। जब गोरखपुरसे बाबूजी ही नहीं गये, तब बाबाका जाना होता ही कैसे? बाबूजी जाते तो उनके साथ बाबाका जाना हो पाता। विवाह हो जानेके बाद कमली मैया गोरखपुर आयी और बाबासे कहने लगी – बाबा! विवाहवाले दिन आप भी पधारे और भाईजी भी पधारे। भात भरनेका समय था। मैंने देखा कि आप आये हैं तथा एक स्थानपर आसन लगाकर बैठ गये हैं। भात दोपहरके समय भरा गया था और आप दोपहरके बादसे तबतक बैठे रहे, जबतक वर-वधूके फेरोंका काम पूरा नहीं हो गया। भात भरनेसे लेकर भाँवर देनेके समयतक आप मुझे बैठे हुए दिखलायी देते रहे। इसी प्रकार भाईजी आये, भाईजी और आप दोनों ही साथ-साथ आये थे। श्रीभाईजीने भात भरनेके समय मुझको चुनरी ओढ़ाई, बहुत बढ़िया चुनरी और फेरोंके कामतक विराजे रहकर विवाहके कार्यमें सहयोग देते रहे।

कमली मैयाको यह अनुभूति हुई, कोई एक मिनट या दो मिनटके लिये नहीं, अपितु लगातार अपराह्न कालसे लेकर मध्य रात्रितक। इन्हीं कमली मैयाका सन् १९६१ ई. के मई मासमें देहान्त हो गया।

'सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग', उसी तरह वह

पाञ्चभौतिक शरीरका परित्याग करके इस संसारसे विदा हो गयी। शामके समय बाबाकी भिक्षाके लिये चावलोंको चुग रही थी, चावलोंसे भरी थाली अपने हाथमें लिये कंकड़-कचरा साफ कर रही थी, उसी समय उसके पेटमें हलका-सा दर्द हुआ। हाथकी थाली नीचे रखकर वह कमरेकी जमीनपर ही लेट गयी। लेटनेके कुछ देर बाद ही उसने सदाके लिये विदाई ले ली। उसके लेटते ही डाक्टर बुलाया गया, डाक्टर साहब पहुँच पायें, इसके पहले ही जा चुकी थी। यह सूर्यास्तका समय था। उसके जाते ही गीतावाटिकामें शोक छा गया।

बाबूजी और बाबा एक कार्यसे प्रयाग गये हुए थे। जिस समय कमली मैयाका देहान्त हुआ, उसी समय वे प्रयागसे प्रस्थान करनेवाले थे। तुरंत प्रयाग फोन किया गया। पता चला कि वे लोग ट्रेन द्वारा प्रयागसे प्रस्थान कर चुके हैं। ट्रेन प्रयागसे चलकर वाराणसी होते हुए गोरखपुर आती है। ट्रेनके वाराणसी पहुँचनेमें अभी कुछ देर थी। तुरंत ही वाराणसीमें एक व्यक्तिको फोन करके कहा गया – आप वाराणसी स्टेशनपर जाकर ट्रेनमें बाबा-बाबूजीसे मिलें और उनको कमली मैयाके निधनका समाचार दें। फिर यह बतायें कि हमलोग शव लेकर गोरखपुरसे वाराणसी पहुँच रहे हैं, बाबा-बाबूजी वाराणसी उतर जायें और कलकत्तेसे कमली मैयाके लड़के वाराणसी आ जायेंगे। फिर बाबा-बाबूजीकी उपस्थितिमें श्रीगंगाजीके तटपर मैयाका अन्तिम संस्कार उनके पुत्रके हाथों वाराणसीमें हो जायेगा। बाबा-बाबूजीसे बात कर चुकनेके बाद हमलोगोंको फोनसे उनकी सहमतिकी सूचना तुरन्त दें।

हम लोगोंका फोन पाकर वे व्यक्ति तुरन्त वाराणसी स्टेशनपर गये। वे वहाँ ट्रेनपर बाबा-बाबूजीसे मिले तथा उन्हें सारी बातें बतायी। बाबाने उनसे कहा – आप तुरन्त गोरखपुर फोन कर दें कि शवको वाराणसी नहीं लाना है। अन्तिम संस्कार गोरखपुरमें ही होगा। हमलोग इसी ट्रेनसे सबेरे गोरखपुर पहुँच रहे हैं।

उन व्यक्तिने वाराणसीसे फोन करके यह समाचार हमलोगोंको बता दिया। समाचार सुनकर हमलोगोंको आश्चर्य हो रहा था, आश्चर्य इसलिये कि कमली मैयाके परिवारके लोग कलकत्तेसे वाराणसी बहुत आसानीसे प्रातःकालतक पहुँच जाते, किंतु गोरखपुर पहुँच सकना किसी भी प्रकारसे

सम्भव नहीं था। बाबाका यह निर्णय हमलोगोंको बड़ा अटपटा लग रहा था और मन-ही-मन कह रहे थे कि बाबाका खेल बड़ा विचित्र है। अस्तु, सबेरे बाबा-बाबूजी गीतावाटिका पहुँचे। शव-यात्राकी तैयारी होने लगी। अब प्रश्न था कि चितामें अग्नि कौन देगा। बाबाने कहा – मैं दूँगा।

यह सुनते ही बाबूजी क्षुब्ध हो गये और क्षुब्ध स्वरमें ही बोले – यह कौन-सा धर्म है कि संन्यासी अग्निका स्पर्श करे और इससे भी आगे बढ़कर किसीकी चितामें अग्नि दे?

बाबाने बड़े शान्त स्वरमें कहा – आद्य शंकराचार्यजीने भी तो अपनी माँकी चितामें अग्नि दी थी।

बाबूजीने कहा – वह तो उनकी जन्मदात्री माँ थी, पर यह क्या आपकी जन्मदात्री माँ है? फिर उनके द्वारा जो अग्नि दी गयी, वह प्रदत्त वचनके अनुसार असाधारण परिस्थितिमें उनके लिये एक विशेष धर्म था। क्या असाधारण परिस्थितिकी बातको साधारण स्तरपर उतार लाना चाहिये?

बाबाने फिर उसी शान्त स्वरमें कहा – विशेष धर्म नहीं, परम-विशेष-धर्मके अनुसार यह मेरी जन्मदात्री माँसे भी बढ़कर है।

बाबूजीने निराश स्वरमें कहा – आपको समझा सकना कठिन है।

इस प्रेम-कलहका स्वरूप था बड़ा अनोखा। बाबा अपने प्रेम-धर्मका निर्वाह करनेके लिये प्रीतिकी वेदीपर अपनी प्रतिष्ठा, अपनी मर्यादा, अपने सर्वस्वकी बलि चढ़ानेके लिये कटि-बद्ध थे। अब अर्थ लगा कि बाबाने शवको वाराणसी लानेसे क्यों मना कर दिया था। इसके साथ ही बाबूजीके मनमें भी अपनी धर्म-बहिन कमली मैयाके प्रति स्नेहकी एक धारा प्रवाहित हो रही थी, जो प्रच्छन्न थी। शवके साथ बाबा तथा बाबूजी श्मशान भूमि राजघाट गये। बाबाने चिताको अग्नि दी और बाबाके साथ-साथ बाबूजीने भी अग्नि दी, बाबाने चरणोंकी ओरसे और बाबूजीने मस्तककी ओरसे। जबतक शव पूर्णतः भस्मीभूत नहीं हो गया, तबतक अर्थात् तीन घंटेसे भी बहुत अधिक समयतक बाबूजी और बाबा, दोनों ही राजघाटपर रहे। बाबूजी तथा बाबा, दोनोंने अपने-अपने ढंगसे प्रेम-धर्मका निर्वाह किया।

गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है –

'प्रीति कि रीति न जाति बखानी'।

* * * * *

दधि-कर्दमोत्सव का उल्लास

गीतावाटिकामें जो श्रीराधाष्टमी महोत्सव मनाया जाता है, उसमें अष्टमी तिथिको श्रीराधा-जन्म एवं नौमी तिथिको दधि-कर्दमका उल्लास रहता है। प्रसंग सम्भवतः सन् १९६२ का है। दधि-कर्दमोत्सव वस्तुतः बधाई दिवस है, जिस दिन सभी व्रजवासी वृषभानुनन्दिनीके प्राकट्यपर अपने अन्तरके आह्लादको व्यक्त करते हैं। गीतावाटिकामें बाबा द्वारा मनाये जानेवाले श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें श्रीबजरंगलालजी बजाज पद गाकर बधाई दिया करते थे। उन्हें बाबाका ढाढ़ी कहना चाहिये। जबतक उनका शरीर रहा, वे ही मुख्य ढाढ़ी होते थे।

श्रीबजरंगजी जबलपुरके रहनेवाले थे। घर-गृहस्थीका सारा दायित्व अपने बालकोंको सौंपकर आप स्थायी रूपसे बाबूजीके पास गीतावाटिका चले आये थे। श्रीराधा-सुधा-निधिका वे सदा पाठ किया करते थे। उनका हृदय इतना रसार्द्र था कि श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-पदोंको सुनते समय उनके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा बह चलती थी। जबतक पदोंका सरस गायन होता, उनके कपोल भीगते ही रहते थे। आपका बाबूजीके प्रति सख्य-भाव था। बाबूजीके हितका चिन्तन और उनके सुखका संयोजन-सम्पादन, यही श्रीबजरंगजीकी सभी चेष्टाओंका प्रेरक तत्त्व था। बाबूजी जब कभी गम्भीर हुआ करते थे तो उनको प्रफुल्ल बनानेका श्रेय श्रीबजरंगजीको ही मिलता था। गम्भीर स्वभाववाले बाबूजीको कमरेका एकान्त अधिक अच्छा लगा करता था, पर कमरेके उस गम्भीर एकान्तसे उत्सवके उल्लासके मध्य बाबूजीको ले आनेका कार्य अनेक बार श्रीबजरंगजी ही कर पाते थे। श्रीबजरंगजी दधि-काँदोके दिन ढोलक बजाकर और ढाढ़ीके पद गाकर बधाई दिया करते थे, अतः लोगोंने उनको 'ढोलकियाजी' कहना आरम्भ कर दिया था। इतना ही नहीं, बाबाके अधिकांश परम ऐकान्तिक कार्यक्रमोंमें ढोलकियाजीकी उपस्थिति रहा करती थी और उनका काम था उन परम ऐकान्तिक गायन-कार्यक्रमोंमें ढोलक बजाकर ठेका देना।

किंचित् आवश्यक था, अतः बीचमें श्रीबजरंगजीका परिचय देना पड़ गया। बाबूजीकी बड़ी चाह रहा करती थी कि श्रीराधाष्टमी महोत्सव

सुन्दर प्रकारसे मनाया जाये, जिससे सच्चे भावग्राही और नखशिख रसमय बाबाको परम सुख मिले। अबतक नौमी तिथिको दधि-कर्दमोत्सवमें कोई भी गायक किसी प्रकारका भी अवसरोयुक्त बाह्य वेष धारण नहीं किया करता था, साधारण वेषमें ही पद-गायन कर दिया जाया करता था। उस समयतक रासमण्डलीका श्रीराधाष्टमी महोत्सवपर कभी आना हुआ ही नहीं था। इस बार नयी बात यह हुई कि उत्सवके एक-दो दिन पहले बाबूजीने ठाकुर श्रीघनश्यामजीको बुलाकर कहा – नौमी तिथिको बजरंगजी ढाढ़ीके रूपमें खड़े होकर बधाईवाले पद गायेंगे, उनको पदके भावानुकूल वस्त्र पहना देना। उस वेषमें पद-गान करनेसे भावोद्दीपन अधिकाधिक होगा और बाबाके मनको बड़ा भायेगा।

बाबूजीका इतना संकेत पर्याप्त था। ठाकुरजी बाजार गये तथा कई व्यक्तियोंको धारण कराने योग्य शृङ्गारका आवश्यक सामान खरीद लाये। इस वर्ष श्रीराधाष्टमीपर श्रीहरिवल्लभजी तथा श्रीश्रीरामजी भी आये थे। श्रीबजरंगजी थे मुख्य ढाढ़ी, उनके साथमें श्रीहरिवल्लभजी और श्रीश्रीरामजी ढाढ़ीके रूपमें खड़े थे और ठाकुरजी बने ढाढ़ीके बालक। नौमी तिथिको दधि-काँदोके उत्सवमें ये सभी लोग उचित शृंगार धारण करके मण्डपमें आये। वेष धारण करके उत्सवमें आनेका यह सर्वप्रथम अवसर था। वेष-सहित आने भरकी देर थी, फिर क्या कहना? उत्सवमें रंग आ गया। रंग केवल आ ही नहीं गया, अपितु रंग उमड़ने लगा, रंग बहने लगा। मण्डपमें खड़े होकर ढाढ़ी लोग बधाईके पद गाने लगे। उपस्थित भक्त लोग तो यह दृश्य पहली बार देख रहे थे, देख-देख करके आश्चर्य कर रहे थे कि आज क्या हो रहा है। आश्चर्य-चकित भक्तगण रस-रंगके प्रवाहमें बहे जा रहे थे। 'परम प्रेम लोचन न अघाता'। मंचपर बैठे हुए बाबूजीके आनन्दकी सीमा नहीं थी। बाबा तो बाबूजीके पार्श्वमें नेत्र बन्द किये हुए निस्स्पन्द ध्यानस्थ बैठे हुए थे।

ढाढ़ी-बालक (ठाकुर श्रीघनश्यामजी) के मनमें आज उमंग उफन रहा था, उसके मनमें चुलबुली मची हुई थी, पर उसके अन्तरको चैन कहाँ? बाबा जबतक नेत्र बन्द किये ही बैठे रहेंगे, तबतक तो सारा

आनन्द ही फीका है। जबतक इस नवीन दृश्यको बाबा अपनी आँखोंसे देख न लें और देखकर भावमें बह न जायें, तबतक तो सारा सुख ही ओछा है, ओछा ही नहीं, सर्वथा थोथा है। ढाढ़ी-बालकने सोचा कि आज मजा तब आये, जब बाबाके हाथसे बधाई मिले। इस विचारके मनमें आते ही ढाढ़ी-बालक मंचपर चढ़ गया और बाबाको प्रणाम करके बोला – बाबा! बाबा! ओ बाबा! दण्डोत। बधाई है! बधाई है!!

बाबा 'भीतर'से 'बाहर' आये और फिर उन्होंने अपने नेत्र खोले। नेत्र खोलकर कुछ विस्मय, कुछ जिज्ञासा, कुछ कौतूहल भरी दृष्टिसे देखने लगे कि यह कौन-सा बालक मेरे पास आकर खड़ा हो गया है और बधाई दे रहा है। ढाढ़ी बालकने मूँछ लगा रखी थी, अतः बाबा पहचान नहीं सके। बाबूजी समझ गये कि बाबा पहचान नहीं पाये हैं। बाबासे बाबूजीने कहा – बाबा! यह अपना घनश्याम है न!

फिर तो बाबा ठठाकर हँस पड़े और प्यारमें अत्यधिक उमड़कर उसी क्षण एक प्यारभरी चपत ढाढ़ी-बालकके गालपर लगा दी।

ढाढ़ी-बालकने कहा – बाबा! इस गालपर भी।

बाबाने फिर दूसरे गालपर भी मीठी-सी चपत लगा दी। जिन-जिनने यह दृश्य देखा, उनका हृदय भर आया, उनकी आँखें भर आयीं।

'प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े'।

ढाढ़ी-बालक तुरंत मंचपरसे उतरकर अपने ढाढ़ी-परिवारमें सम्मिलित हो गया और लगा नाच-नाच करके रिझाने। बाबाके मनमें भी आह्लाद इतना उमड़ा कि वे उठकर खड़े हो गये। बाबाको मंचपर खड़े देखकर ढाढ़ी-परिवारको अपार आनन्द हुआ, उनके हृदयका उल्लास जितना और जैसा उमड़ा, उसको शब्दोंमें व्यक्त कर सकना सर्वथा असम्भव है। उनके उल्लासका सागर आज अमर्यादित रूपसे चंचल हो उठा था। वे झूम-झूम कर, नाच-नाच कर, मटक-मटक कर बधाईके पद गा रहे थे। सारा दृश्य विचित्रसे विचित्र होता चला जा रहा था। 'अति विचित्र कहि जात सो नाहीं'। बाबाके अन्तरका भावाह्लाद रह-रह करके कभी हास्य, कभी मुस्कान, कभी जय-जय स्वर, कभी बाहूत्तोलनके रूपमें व्यक्त हो रहा था। ढाढ़ी-बालक पुनः मंचपर आया और मटक कर बाबासे कहने लगा – लाली जायी है न!

उसकी बधाई दो। केवल प्यारभरी चपतसे काम नहीं चलेगा।

मंचपर व्रज-मण्डलकी रचना बनायी गयी थी। उसमें तुलसी-कानन भी बनाया गया था। बाबाने तुरंत झुककर कई तुलसी-दल तोड़ लिये। ढाढ़ी-बालकने अपना मुँह खोल दिया और उसके मुँहमें बाबाने तुलसी-दल अपने हाथसे डाल दिया। बाबाने फिर तुलसी-दल श्रीबजरंगजी, श्रीहरिवल्लभजी और श्रीश्रीरामजीको भी दिया। बाबासे प्राप्त तुलसी-दलको चाँदीके थालमें रखकर और उस थालको हाथपर रखकर ढाढ़ी-बालकने आज एक निराला ही नृत्य प्रस्तुत किया। दर्शकगण चकित हो रहे थे कि आज यह क्या देखनेको मिल रहा है। किसीको सुध-बुध नहीं थी कि हम कहाँ बैठे हैं। सभी गीतावाटिकाको, यहाँतक कि स्वयंको भी विस्मृत कर चुके थे। आजकी रसमयता वस्तुतः वर्णनातीत है। 'कहिअ काह कहि जाइ न बाता'।

इसी बीच एक और नवीन बात घटित हो गयी। अपनी सेवा-परायणता, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, संकोची प्रकृति, मित-भाषिता आदिके कारण रामसनेहीजी हम सभीके लिये बड़े आदरणीय हैं। ऐसे गम्भीर स्वभाववाले रामसनेहीजी पंडालमें एक किनारे बैठे हुए यह सब देख रहे थे। बाबाको मंचपर खड़े देखकर वे बहुत अधिक भावोर्मिल हो उठे। बाबा तो सदा ही मंचपर ध्यानस्थ बैठे रहा करते थे, यह तो पहला ही प्रसंग है कि बाबा मंचपर खड़े हुए हों और उनके हृदयका आह्लाद उछल रहा हो। भाव-सागरकी इन दिव्य तरंगोंपर रामसनेहीजीका सारा अस्तित्व लहराने लगा। भाव-विभोर रामसनेहीजी अपने स्थानपरसे उठे और बैठे हुए भक्तोंकी भीड़को चीरते हुए मंचकी ओर बढ़ने लगे। लोगोंको बड़ा कौतूहल हो रहा था कि प्रकृतिसे अति गम्भीर रामसनेहीजी आज क्या करने जा रहे हैं। लोगोंकी दृष्टि रामसनेहीजीपर टिक गयी। रामसनेहीजीने मंचपर जाकर बाबाके कर-पल्लवको थाम लिया और विनम्र वाणीमें उन्होंने अनुरोध किया – आप मंचसे उतरकर नीचे ढाढ़ी-परिवारके बीच नृत्य-मण्डलमें पधारें।

रामसनेहीजीके इस अनुरोधको सभी लोग बड़ी चकित दृष्टिसे देख रहे थे। बाबा भली-भाँति समझ रहे थे कि रामसनेहीजी इस समय 'दूसरे राज्य' में हैं, अतः प्यारसे थपथपा करके उन्हें अपने पास ही बिठा लिया।

रामसनेहीजीकी इस भावमयताने वातावरणकी रसमयताको और अधिक घनीभूत बना दिया। गायन एवं नृत्यका उल्लास ढाढ़ी-परिवारमें बढ़ता ही चला जा रहा था। बाबाके पास ही श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला बैठे हुए थे। बाबाने उनके हाथकी कलाई-घड़ी उतरवाकर बधाईकी न्योछावरके रूपमें दे दी। पंडालका सम्पूर्ण वातावरण जयकारकी ध्वनिसे भर आया। बाबाको इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ। बाबाने माँसे एक स्वर्ण-चूड़ी माँग ली। माँने अपनी कलाईमेंसे स्वर्ण-चूड़ी उतारकर बाबूजीके हाथपर रख दी और बाबाने बाबूजीके द्वारा ही वह स्वर्ण-चूड़ी बधाईमें मुख्य ढाढ़ीको दिलवा दी। अब जय-जयकारका तुमुल नाद पंडालमें चारों ओर फूट पड़ा। न तो ढाढ़ी-परिवारका बधाई-उल्लास कम हो रहा था और न बाबाकी उमंग घट रही थी। बाबाके पास ही बाबूजी भी खड़े थे। बाबाने बाबूजीकी धोतीका अगला भाग अपनी ओर खींच लिया और उस धोतीका लगभग दो-तीन अँगुल छोर फाड़कर हरिवल्लभजीको दे दिया। उस छोरकी माला बनाकर हरिवल्लभजीने उसे अपने गलेमें पहन लिया। ऐसी ही छोर-प्रसादी सभी ढाढ़ियोंको भी मिली।

छोर-प्रसादी पानेवालोंके सौभाग्यकी सराहना एक-एक व्यक्ति मुक्त कण्ठसे कर रहा था। दधि-काँदोके बाद जब ठाकुरजी बाबासे मिले तो बाबाने कहा – ठाकुर! आज तो लोकातीत दिव्य दृश्य उपस्थित हो गया था। पन्द्रह-बीस साल पहलेकी मेरी भावनाको आज श्रीपोद्दार महाराजने मूर्त रूप प्रदान कर दिया। जो बात बीस साल पहले मैं सोचा करता था, वही आज मेरे सामने प्रत्यक्ष थी। एक बात और, पोद्दार महाराजकी धोतीका जो छोर मिला है, उसे तू साधारण मत समझना। वह छोर परम दिव्य वस्तु है।

फिर बाबाने उस छोरपर एक छन्द बनाकर ठाकुरजीको सुनाया। वह छन्द इस प्रकार है –

साँवर सुन्दरकी धोतीकी वह एक किनारी फाड़ी है।
तुम तुच्छ न वस्तु उसे समझो, उसमें व्रज-रसकी खाड़ी है।।
राधा-करसे खोदी, उसके कण-कणमें कृष्ण खिलाड़ी है।
अवगाहन मत्त सहित उसके जो पहरे नीली साड़ी है।।

इस प्रकार कुटियाके एकान्त स्थलमें बाबासे ठाकुरजीकी बातचीत

होती रही। ठाकुरजीने बाबाको सारा वृत्त बताया कि किस प्रकार बाबूजीने बाजारसे वस्त्र खरीदनेके लिये प्रेरित किया था। इसके बाद ठाकुरजीने बाबासे कहा – बाबा! हमलोग तो युगल निधिके उपासक हैं।

बाबाने पूछा – तुम्हारे इस कथनका अर्थ क्या?

ठाकुरजीने कहा – बाबा! जिस प्रकार हमें बाबूजीके वस्त्रकी छोर-प्रसादी मिली, उसी प्रकारसे हमें आपके वस्त्रकी भी प्रसादी मिलनी चाहिये।

बाबाने कहा – ठाकुर! तू भला कहाँ अवसर चूकनेवाला है?

बाबाने फिर अपनी भी वस्त्र-प्रसादी प्रदान की। यह दुर्लभ वस्त्र-प्रसादी श्रीबजरंगजी, श्रीहरिवल्लभजी तथा ठाकुरजीको मिली।

* * * * *

स्विटजरलैंड निवासी श्रीरुडोल्फ सुएस

स्विटजरलैंडके ल्यूजर्न नगर निवासी श्रीरुडोल्फ सुएस (Shri Rudolf Suess) के जीवनके आरम्भसे ही हृदयमें आध्यात्मिक पिपासा भरी हुई थी, अतः चौबीस वर्षकी आयुमें ये छोटी मोटर कार द्वारा अपने देशसे भारत-यात्राके लिये निकल पड़े तथा मार्गमें पड़नेवाले कई देशोंकी सीमाओंको पार करते हुए आप १९६३ की १७ मार्चको गीतावाटिका पहुँचे।

श्रीसुएस हिन्दी भाषा तो जानते ही नहीं थे। उनका जर्मन, स्विस तथा फ्रेंच भाषापर अच्छा अधिकार था। अँग्रेजी भाषाका ज्ञान साधारण स्तरका कहा जा सकता है। प्रथम बातचीतके बीच उन्होंने बतलाया – मैं ऐसे व्यक्तिकी खोजमें भारत आया हूँ, जो मुझे भगवत्प्राप्ति करा दे या मुझे आत्मसाक्षात्कार करा दे।

मैं उनको बाबाके पास ले गया। तब बाबा अपनी पुरानी कुटियामें रहते थे। बाबाने बड़े सम्मान सहित उनसे आसन ग्रहण करनेके लिये कहा। इतना ही नहीं, श्रीसुएसका हाथ अपने हाथमें लेकर वन्दन भी किया।

बाबाका दर्शन करते ही श्रीसुएसकी विचित्र भावदशा हो गयी।

बाबासे उनकी बहुत देरतक बातचीत होती रही। बाबाके पाससे आनेके बाद श्रीसुएसने बतलाया था –

Now I know I have found this man, Swami Chakradharaji is the personification of the highest aim, every human being is searching for and at the same time he is the personification of the path, that leads to this aim. I have found, what I have been yearning for and at this moment my yearning is stilled. I feel complete harmony and I am put into a blessed state, beyond all words. The hour, that I was permitted to spend with Swamiji, belongs to the deepest experiences of my life.

(जिसकी खोज थी, वह व्यक्ति मुझे प्राप्त हो गया है। मानव मात्रके लिये जो उच्चतम प्राप्तव्य लक्ष्य हो सकता है, उसके साकार स्वरूप स्वामी श्रीचक्रधरजी हैं। इतना ही नहीं, उस प्राप्तव्यकी प्राप्ति करा देनेवाले साधनपथके भी साकार स्वरूप हैं। जिस वस्तुकी मुझे तीव्राभिलाषा थी, वह मुझे मिल गयी है। मेरी लालसा अब शान्त है। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं एक अनिर्वचनीय दिव्यानन्दमें निमग्न हूँ।)

श्रीसुएस इस पहली भेंटमें बाबाके पास लगभग एक घण्टा रहे। बाबासे अंग्रेजी भाषामें जो आध्यात्मिक बातचीत हुई तथा उनकी जो भावमयी संनिधि मिली, वे श्रीसुएसके जीवनके लिये स्मरणीय क्षण थे। इस पहली भेटमें ही बाबाने उनसे कहा था – मैं जानता था कि आप मुझे मिलेंगे।

इस भेंटसे श्रीसुएस इतने भाव विभोर थे कि रात्रिके समय उन्हें निद्रा नहीं आ सकी। दूसरे दिन १८ मार्चको बाबासे विदाई लेकर श्रीसुएस नेपालकी ओर चले गये। चलते-चलते उन्होंने बाबासे सम्बन्धित एक वाक्य अपनी डायरीमें लिख लिया – 'I shall never forget him.' अर्थात् मैं उन्हें कभी नहीं भूलूँगा। गीतावाटिका आकर उनको अपार आनन्द हुआ, किन्तु यहाँके आध्यात्मिक वातावरणसे विदाई लेते समय उन्हें व्यथा भी कम नहीं हुई।

श्रीसुएस १७ मार्च १९६३ को आये और एक दिन बाद १८ मार्चको यहाँसे नेपालके लिये चले गये। १८ मार्चसे लेकर ७

नवम्बरतक वे नेपाल तथा भारतके विभिन्न स्थानोंका भ्रमण करते रहे।

अब उन्हें स्वदेश स्विटजरलैंड जाना था। जानेके पहले पुनः बाबाके दर्शनार्थ वे गोरखपुर आये। आये ८ नवम्बर १९६३ को। संयोगसे इस दिन छोटी श्रीराधाष्टमी थी।

एक कमरेमें सामान रखकर तथा स्नानादिसे निवृत्त होकर श्रीसुएस बाबाके पास आये। उन्होंने बाबाको भारतीय रीतिसे प्रणाम किया। बाबाने बैठनेके लिये आसन दिया। श्रीसुएससे सारी बातचीत अँगरेजी भाषामें हुई। बातचीतमें बाबाने श्रीसुएससे कई बार कहा – मैं और आप एक ही हैं। मैं आपके साथ हूँ, आपके भीतर हूँ। आपके प्रत्येक अणु-अणुमें हूँ।

इस वाक्यको अनेक बार कहनेका प्रयोजन यही था कि इस तथ्यपर उनका मन टिक जाय और उनके मनमें विश्वास स्थिर हो जाय। बातचीत करते-करते बाबा अपने आसनसे उठे, अपनी कुटियाके भीतर गये और एक छोटी-सी पोटली उठा लाये। उस पोटलीको खोलकर बारह छोटे-छोटे पूजा-वस्त्र निकाले। उन पूजा-वस्त्रोंको रुमाल कहा जा सकता है। उन बारहों रुमालोंपर कम या अधिक संख्यामें कुमकुमके चिह्न थे। उन पूजा-वस्त्रोंको क्रम-क्रमसे बाबाने फैला दिया तथा श्रीसुएससे कहा – इन बारहोंमेंसे किसी एकको चुन लें।

ज्यों ही एक पूजा-वस्त्र श्रीसुएसने उठाया, बाबाने प्रसन्न मनसे सराहना करते हुए कहा – आपने चुनाव बड़ा सुन्दर और सही किया है। इसे सुरक्षित रखियेगा। इसको सुरक्षित रखना अनेक प्रकारसे उपयोगी सिद्ध होगा। यह पूजा-वस्त्र आपके आध्यात्मिक जीवनके लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

सचमुच यह पूजा-वस्त्र श्रीसुएसकी जीवननिधि बन गया। इस पूजा-वस्त्रको वे सदा साथ रखते। भविष्यमें वे जब-जब भारत आये, इसे अपने साथ लाये। यह पूजा-वस्त्र उनके लिये बाबाकी संनिधिका एक प्रतीक था।

आज श्रीराधाष्टमी है, अतः बाबाने अपने कर-कमलसे प्रसादका एक कौर श्रीसुएसको खिलाया। श्रीसुएसके आनन्दकी सीमा नहीं थी। आनन्दातिरेकमें आज रातको भी नींद नहीं आ सकी। अगले दिन ९ नवम्बरको सारे दिन श्रीसुएस बाबाके समीप रहे। सारे दिन आनन्दकी

लहरोंपर उतराते-बहते रहे। वह आनन्द वर्णनातीत है। उस दिन शामको उन्हें विदा होना था। विदाईके प्रसंगने उनके भीतर एक टीस उत्पन्न कर दी। तब उन्हें आश्वस्त कर देनेके लिये बाबाने कहा – हम दोनों फिर मिलेंगे।

उत्सुकतापूर्वक श्रीसुएसने पूछा – कब?

बाबाने कहा – उचित समयके आते ही आपको स्वतः जानकारी हो जायेगी।

जब श्रीसुएसने विदाई ली तो बाबाने एक हिन्दी गीतके भाव बतलाये। वह इस प्रकार है –

तू मेरे स्मितकी आभा अपने साथ लेता जा।

तू मेरे चिन्तनका नवनीत अपने साथ लेता जा। क्या तुमने देखा नहीं है कि रात्रिके घोर अन्धकारकी तनिक भी परवाह न करते हुए लघु-लघु सितारे मुस्कुराते रहते हैं? तब तुम बतलाओ कि तुम्हारे किसलयके समान कोमल अधरोंका उल्लास कुण्ठाकी जड़तासे विदलित क्यों है? यदि तुमको निर्जन पथपर चलना पड़ रहा है तो भयान्वित क्यों हो रहे हो? मार्ग-दर्शनके लिये तू मेरे जीवनकी ज्योति अपने साथ लेता जा।

तू मेरे स्मितकी आभा अपने साथ लेता जा।

तू मेरे अन्तरका सौरभ अपने साथ लेता जा। यदि मार्गमें चलते-चलते तेरे हाथका पथ-प्रकाशक दीपक अचानक बुझ जाता है और निशान्धकारकी सघनतामें पथानुसन्धान नहीं मिल पानेसे तेरे चरण स्तम्भित हो जाते हैं, तो तुम बतलाओ कि इस प्रतिकूलतामें भी तुम्हारी आस्था विचलित और तुम्हारे चरण विकलित क्यों हो रहे हैं? भले घनी निराशाकी कालिमाने तुमको पूर्णावृत कर लिया है, पर विश्वास करो, तिमिराच्छन्न मार्गमें जहाँ तुम्हारे चरण ठहर गये हैं, उसी स्थानपर मंजिल अपने आप आ जायेगी। लक्ष्य-सिद्धिके लिये तू मेरे आशीर्वादकी निधि अपने साथ लेता जा।

तू मेरे स्मितकी आभा अपने साथ लेता जा।

दिव्य और भव्य भावोंकी यह निधि श्रीसुएसके जीवनकी अलौकिक वस्तु थी। इसे प्राप्त करके श्रीसुएस अपने भाग्यकी सराहना करने लगे। उन्होंने बड़े भारी मनसे बाबासे विदाई ली। बाबा अपनी कुटियाके द्वारपर

खड़े रहे और तबतक खड़े रहे, जबतक श्रीसुएस दिखलायी देते रहे। श्रीसुएस बम्बई होते हुए अपने देश स्विटजरलैंड चले गये।

सन् १९६३ में श्रीसुएसकी बाबासे भेंट दो बार हुई। इसके बाद श्रीसुएस अपने देशसे बाबासे मिलनेके लिये सन् १९८९ और १९९१ में आये। वे बाबाके तिरोधान होनेके बाद भी १९९३ के फरवरी मासमें भाव-भरा हृदय लिये हुए आये। सम्भवतः सन् २००० के आस-पास श्रीसुएसका निधन हो गया। फिर श्रीसुएसकी धर्मपत्नी सन् २००२ में स्विटजरलैंडसे बाबाके श्रीविग्रहको प्रणाम करनेके लिये गीतावाटिका आयीं।

* * * * *

भगवती श्रीविष्णुप्रिया जन्मोत्सव

सं. २०२० वि. वसंत पंचमी, अर्थात् १९ जनवरी १९६४ के दिन बाबाने नदियाविहारी शचीनन्दन श्रीनिमाई पण्डितकी प्राणनिधि भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका जन्मोत्सव बड़े भावपूर्वक मनाया था। भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके प्रति श्रीजयदयालजी डालमियाका अत्यधिक भक्तिभाव है। प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीने महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवपर, श्रीलक्ष्मीप्रियापर, श्रीविष्णुप्रियापर तथा विष्णुप्रिया-निमाईपर प्रभूत साहित्यकी रचना की है। इन्हींकी बंगला भाषामें एक श्रेष्ठ रचना 'श्रीविष्णुप्रिया नाटक' है। इस नाटकके हिन्दी अनुवादकी पाण्डुलिपिका पूजन भी इसी वसंत पंचमीको हुआ। मेरा अनुमान है कि इस नाटकका बंगला भाषासे हिन्दीमें रूपान्तर स्वयं श्रीडालमियाजीने किया है, भले अनुवादका किंचित् संशोधन किसी अन्यसे करवाया गया हो। मेरा यह भी अनुमान है कि जिस प्रकार बाबाने 'सनातन शिक्षा'के अनुवाद और प्रकाशनके लिये श्रीडालमियाजीको प्रोत्साहित किया, उसी प्रकार 'श्रीविष्णुप्रिया नाटक'के अनुवाद और प्रकाशनका कार्य बाबा द्वारा श्रीडालमियाजीको सौंपा गया होगा। इस नाटकका पुस्तकाकार प्रकाशन तो सं. २०२१ वि. की रासपूर्णिमाको हुआ, पर जब इसके हिन्दी अनुवादकी पाण्डुलिपि तैयार हो गयी, उस समयकी बात है।

पाण्डुलिपिके तैयार होते ही बाबाने निश्चय कर लिया कि

सं. २०२० वि. की वसंत पंचमीके दिन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका और इस ग्रन्थका पूजन करना है तथा यह पूजन श्रीडालमियाजीसे करवाना है। वसंत पंचमी तो आयेगी दस-ग्यारह मास बाद, पर बाबाकी ओरसे अग्रिम तैयारी अभी से आरम्भ हो गयी। वसंत पंचमीसे आठ-नौ मास पूर्व एक दिन बाबाने मुझको बुलाया और मुझसे कहने लगे – आपको एक कविता लिखनी है। उसकी वर्ण्य-वस्तु तथा कथा-प्रवाह क्या होगा, वह मैं आपको अभी बतलाऊँगा। मेरे बतलाते समय आप न कोई प्रश्न पूछियेगा और न कोई जिज्ञासा करियेगा। मेरी बतलायी हुई बातोंमेंसे जितना स्मरण रह जाय, उतना पर्याप्त है। मेरे वर्णनके आधारपर जो कविता आप लिखें, उसे वसंत पंचमीके पूर्वतक कभी भी मुझे दिखलाइयेगा मत और यदि कविताकी रचना आपके द्वारा नहीं हो सके तो मनमें ग्लानि भी मत करियेगा। यदि आपने कविताकी रचना कर ली तो वसंत पंचमीके दिन अपनी कुटियाके एकान्तमें जयदयालजीको सुनवाऊँगा।

इस प्रकार अनेक प्रतिबन्ध लगाकर बाबा लगभग एक-डेढ़ घंटेतक लगातार बोलते-बतलाते रहे। मैं दत्त-चित्त होकर सुन रहा था, पर कितना स्मरण रख पाता। सुनी हुई बातोंमेंसे जितना मुझे स्मरण रह सका, वह भी दो-तीन मासमें विस्मृतिके गर्भमें चला गया। अभी तो बहुत समय है – ऐसा सोचकर तुरन्त रचना की नहीं और समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ स्मृति अधिकाधिक धूमिल होती चली गयी। छः-सात मास बाद तो कुछ भी याद नहीं आ रहा था। बाबा द्वारा वर्णित सम्पूर्ण कथा-प्रवाह ही पूर्णतः विस्मृत हो चुका था। मेरा मन बड़ा खिन्न हो गया। निराश और निर्बलका आधार प्रार्थना ही है। मैं मन-ही-मन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीकी बार-बार वन्दना करके उनसे प्रार्थना करने लगा। चार-पाँच सप्ताहकी सतत वन्दना-प्रार्थनाके उपरान्त जो भाव मनमें उभरे, वे ही कविताकी पंक्तियोंमें ढल गये। अपने प्रमाद और विस्मृतिपर मुझे बड़ी शर्म आ रही थी, पर अब मैं इसी बातसे ही सन्तोष कर रहा था कि साधारण स्तरकी कविताकी रचनाके हो जानेसे बाबाके सामने रिक्त-हस्त जानेवाली स्थिति नहीं रही।

बाबाके मनमें एक बहुत बड़ी समस्या थी श्रीविष्णुप्रियाजीके समक्ष निवेदित किये जानेवाले नैवेद्यके सम्बन्धमें। सब जानते हैं कि वे प्रातःकालीन दैनन्दिन पूजनादिके बाद एक पात्रमें कुछ चावल अपने सामने रखकर बैठती थीं और सोलह नामवाले मन्त्रको एक बार जप करके

चावलका एक दाना दूसरे पात्रमें डाल देती थीं। चावलके दानोंके साथ उनका यह जप अपराह्न काल तक चलता रहता। इस रीतिसे दूसरे पात्रमें जितने चावल संचित हो जाते, उसका ही रन्धन किया जाता और फिर वे सिद्ध भातसे अपने प्राणनाथ श्रीचैतन्यदेवको भोग लगाती थीं। इसमेंसे वे थोड़ा-सा प्रसादी भात स्वयं पातीं, शेष प्रसादान्न भक्तोंमें बाँट दिया जाता था। जिन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका समर्पित जीवन कठोर तपका, महान उत्सर्गका, दिव्य भावका मूर्तिमान स्वरूप था, उनके समक्ष निवेदित किया जानेवाला नैवेद्य भी तो परमातिपरम शुद्ध सात्त्विक होना चाहिये। इसके लिये बाबाको आवश्यकता थी परम पवित्र धनकी, जिससे नैवेद्य-निर्माणके लिये सामग्री खरीदी जा सके।

बाबाने अपने निकट आनेवाले प्रत्येक धनपतिसे कमाये गये धनकी शुद्धताके बारेमें पूछा तो बाबाको बड़ी निराशा मिली। सभी धनपतियोंने स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया कि द्रव्यार्जनमें असत्य अथवा असद्भावका किंचित् भी आश्रय लिया ही नहीं गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जो व्यापारी अथवा उद्योगपति आयकरकी चोरी नहीं करते, उनके द्वारा भी अपने कर्मचारियोंके प्रति कभी अन्यथा व्यवहार नहीं हुआ हो, यह स्वीकार करना सर्वथा असम्भव था। बाबाकी इस कसौटीको देखकर सारे धनपति स्वजनोंने अपनी-अपनी विवशता व्यक्त कर दी। जो सरकारी कार्यालयोंके साधु कर्मचारी थे अथवा नगरके महाविद्यालयके सुयोग्य प्राध्यापक थे, उन्होंने भी बाबासे अनुरोध किया। उन सभीसे बाबाका प्रश्न था कि क्या वे लोग डटकर-खटकर-जमकर पूरे समय अपना कार्य सदा करते रहे हैं। बाबाके प्रश्नोंकी झड़ीके सामने वे लोग भी विवशताका अनुभव करने लगे। बाबा हृदयसे चाहते थे कि भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके लिये जो नैवेद्य बने, उस नैवेद्यकी सामग्रीको परम पवित्र रीतिसे कमाये गये अत्यधिक शुद्ध रुपयोंसे खरीदा जाय।

बाबाकी परेशानीको देखकर गोस्वामीजी (श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) ने उनसे कहा – क्या आप मेरा वेतन इस पवित्र काममें ले सकते हैं?

गोस्वामीजीकी बात सुनकर बाबा कुछ देर तक मौन रहे और फिर बोले – आपके धनकी शुद्धता और पवित्रताके बारेमें संदेह करनेके लिये स्थान ही नहीं है। 'कल्याण-कल्पतरु' पत्रिकाका सम्पादन-कार्य स्वरूपतः

परम श्रेष्ठ कार्य है। आपके जीवनमें असत्यका अंश नहीं। आप छः घंटेके स्थानपर तेरह-चौदह घंटे कार्य प्रतिदिन करते हैं, यहाँतक कि आप रविवारको भी अवकाश नहीं लेते। अबतक मैंने जितने भी व्यक्तियोंसे बात की है, उन सभीमें आपका स्थान सर्वोपरि है। इतना होकर भी यहाँ मेरे लिये एक तथ्य विचारणीय है। पत्रिकाके सम्पादन-कार्यके द्वारा आप समाजमें ज्ञानका वितरण करते हैं और इस कार्यको करनेके बदलेमें आप मासिक वेतन लेते हैं। अब विचारणीय तथ्य यह है कि किसी ब्राह्मणके द्वारा ऐसा किया जाना क्या अनुमोदनीय है? अपने भारतवर्षके हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृतिके अनुसार समाजको ज्ञानका दान करनेवाले ऋषि तो आकाश-वृत्तिसे जीवन व्यतीत किया करते थे। कुछ देकर बदलेमें कुछ लेना, यह लेन-देन तो वणिक् वृत्ति है और अपने ऋषियोंका जीवन तो वणिक् वृत्तिसे सर्वथा शून्य रहा है। वे ज्ञानका दान निरपेक्ष भावसे करते थे। यदि आप वैश्य होते तो मैं आपका पवित्र धन सहर्ष स्वीकार कर लेता, किन्तु आप ब्राह्मण हैं, अतः अब मुझे सोचना पड़ रहा है कि आप द्वारा उपार्जित धन स्वीकार करूँ अथवा नहीं।

बाबाकी बात सुनकर गोस्वामीजी मौन हो गये। वैश्यके द्वारा उपार्जित धनको स्वीकार किया जा सकता है, यह सुनकर मैंने कुछ निवेदन करनेके लिये साहस किया। विनम्र शब्दोंमें मैंने बाबासे कहा – बाबा! मैं भी कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

बाबा श्रीविष्णुप्रियाजीकी अर्चनाके लिये जिस प्रकारका परम पवित्र धन चाह रहे थे और पद-पदपर जैसी निराशा मिल रही थी, ऐसी विषम मनस्थितिमें मेरे द्वारा कुछ भी निवेदन किया जाना एक दुस्साहस ही था, यह जानते हुए भी मुझसे निवेदन किये बिना रहा नहीं गया। मेरी बात सुनकर बाबाने पूछा – क्या कहना चाहते हैं?

बाबाने मुझसे पूछा ऐसे स्वरमें, जिसमें कुछ निराशा और कुछ उदासीनता थी। उनके स्वरमें चिरपरिचित सरसता न देखकर मैं साहस बटोर करके डरते-डरते अपनी बात कहने लगा। मैंने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया – बाबा! जब मैं सरदारशहरमें पढ़ाया करता था, तब कई वर्षतक मैं अपने हाथसे चरखे द्वारा सूत कातता रहा हूँ। मैं अपना कमरा बन्द कर लेता था। श्रीरासपञ्चाध्यायीका पाठ बोल-बोलकर करता रहता और सूत कातता जाता। इसमें प्रतिदिन लगभग ४५ मिनट लगते।

अभीतक मैंने किसीको बतलाया नहीं और बतलानेका साहस भी नहीं हुआ, पर सूत कातनेके पीछे भावना यह थी कि इस कते हुए सूतका वस्त्र बने और वह वस्त्र आपके धारण करनेके काममें आये। वह सारा सूत अभीतक मेरे पास पड़ा हुआ है। यह श्रम तो मैंने किया है और परम सात्त्विक उद्देश्यसे किया है। मेरा ऐसा अनुमान है कि इस सूतको बेचकर जो पैसा मिले, वह तो इस पूजनके कार्यमें आ ही सकना चाहिये।

बाबाने मुझसे पूछा – जिस कालेजमें आप पढ़ाते थे, वहाँ नियुक्ति-प्राप्तिके लिये क्या आपने किसीसे सिफारिश करवायी थी, जिसके फलस्वरूप कालेजमें कार्य करनेका अवसर आपको मिल गया और आपसे अधिक योग्य व्यक्ति निराश होकर चला गया?

मैंने पुनः कहा – बाबा! कम-से-कम मैं आपके सामने सत्य बोलूँगा। मैंने किसीसे भी सिफारिश नहीं करवायी थी। कालेजके प्रबन्धकों द्वारा समाचारपत्रमें रिक्त स्थानको विज्ञापित करवाया गया था। मैंने अपना प्रार्थना-पत्र भेज दिया और मुझे साक्षात्कारके लिये बुलवाया गया। मैं उनके लिये और वे मेरे लिये सर्वथा नवीन व्यक्ति थे। और भी कई व्यक्ति आये थे, पर उन लोगोंने नियुक्ति-पत्र अपनी स्वेच्छासे मुझे दिया।

इस विवरणसे बाबाको पूर्ण समाधान हो गया। बाबासे अनुमति मिलते ही सारा सूत एक स्वजनको बेच दिया गया। बेचनेसे जितना रुपया मिला, उसमेंसे रूईका मूल्य निकाल दिया गया। शेष पाँच-छः रुपये बचे। इन्हीं रुपयोंसे नैवेद्य-निर्माणके लिये चावल, बेसन, दही, नमक, हल्दी, जीरा, घी, कोयला आदि खरीदा गया और पूजनके लिये नैवेद्य निर्माणकी तैयारी होने लगी।

चावलको खरीदनेके बाद अब चावलके एक-एक दानेको सोलह नामवाले महामन्त्रसे अभिमन्त्रित करना था। सभी चाहते थे कि इस कार्यमें मुझे भी भाग लेनेका अवसर मिले, पर इस कार्यको करनेकी दृष्टिसे भी बाबाने मन-ही-मन एक विशेष निर्णय ले रखा था। जिसके हृदयमें महातपस्विनी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके त्रयतापहारी श्रीचरणोंमें सच्ची निष्ठा हो और जिसकी मति-रति उन परम विश्ववन्दनीयाके महोत्सर्ग और महानुरागपर बार-बार बलिहारी जा रही हो, उन्हींके द्वारा अभिमन्त्रित करनेका कार्य होना चाहिये और ऐसा सोचकर बाबाने इस कार्यको करनेका सम्पूर्ण सौभाग्य श्रीडालमिया-दम्पतिको प्रदान किया। कुछ लोगोंने बाबासे

निवेदन किया – श्रीजयदयालजी और उनकी जीवनसंगिनी, ये दोनों मिलकर एक दिनमें चावलके कितने दाने अभिमन्त्रित कर पायेंगे?

बाबाने तत्काल उत्तर दिया – इस रीतिसे भले सौ दाने ही अभिमन्त्रित किये जा सकें, पर मुझे तो केवल ये ही सौ दाने चाहिये।

बाबाके उत्तरसे सभीके अधर मौन हो गये। परमादरणीया चाचीजी (डालमियाजीकी धर्मपत्नी) तथा डालमियाजी, दोनोंने स्नान करके शुद्ध देशी वस्त्र धारण किये और पवित्र आसनपर बैठ करके ''हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।'' का जप करते हुए वे चावलके एक-एक दानेको अभिमन्त्रित करने लगे। प्रातःकालसे लेकर दोपहरके लगभग एक-दो बजे तक जप करनेसे जितने दाने अभिमन्त्रित किये जा सके, उनको ही सिद्ध किया गया। जहाँ रन्धन किया गया, उस स्थानकी शुचिताके बारेमें भी बाबा बड़े सावधान थे। सारी भूमिको गायके गोबरसे लीपा गया था। कुछ-कुछ ऐसा याद आ रहा है कि रन्धनका कार्य सम्पन्न हुआ था गोस्वामीजीकी धर्मपत्नीके द्वारा। आज बाबा पद-पदपर सावधान थे, जिससे कठोर-व्रती, महा-साध्वी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके भावोंके अनुरूप कार्य हो सके।

दो नयी चौकीपर विश्वपावनी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका और विश्वप्रेरक श्रीविष्णुप्रिया नाटकका सविधि पूजन हुआ। एक ब्राह्मण दम्पतिका बड़े भाव पूर्वक पूजन किया गया और भोजन कराकर उन्हें पर्याप्त वस्त्र एवं द्रव्य दिया गया। बाबाने यह सारी पूजा श्रीडालमियाजीके द्वारा करवायी। कीर्तनके बोल तो मुझे स्मरण नहीं, परंतु पूजनके बाद भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी एवं महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके नामका बहुत देरतक तुमुल कीर्तन होता रहा। इसके बाद वह परम दिव्य प्रसाद सबके मध्य वितरित किया गया। मात्र कुछ कण ही सभीको मिल पाये। वह प्रसाद था अति दुर्लभ और परम प्रभावकारी। कुटियाके आस-पासका वातावरण बड़ा भावमय हो रहा था। बाबा आज विशेष रूपसे भावाविष्ट थे। बाबाने पहले भी कई बार कहा है और पूजनके समय भी कहा – क्रन्दन ही मेरा जीवन है। सच पूछा जाय तो आज 'क्रन्दन' का उत्सव था। श्रीविष्णुप्रियाजी तो क्रन्दनकी साक्षात् प्रतीक हैं।

रात्रिके समय जगरेके पास बाबाने वह कविता श्रीडालमियाजीको सुनवायी। जाड़ेके दिन थे और कुटियाके बाहर धूनी जल रही थी।

वहींपर बाबाने श्रीडालमियाजीको बैठाया। कुछ और स्वजन भी स्वेच्छासे आ गये और उनको भी बाबाने बैठनेका अवसर दिया। बाबाकी चाह तो पूर्ण एकान्तकी थी, पर वैसी बात बन नहीं पायी। सभीके सामने वह कविता पढ़ी गयी। कविताको सुनकर बाबाने बड़ा साधुवाद दिया और कहने लगे – श्रीगंगाजीमें पापी-तापी-शापीको मुक्ति प्रदान करनेकी जो क्षमता है, उस क्षमतामें और श्रीगंगाजीकी सम्पूर्ण सत्तामें प्रेमकी प्रतिष्ठा करनेके लिये, इतना ही नहीं, उस मुक्ति-प्रदायिनी सत्ताके कण-कणमें प्रेमोद्भूत क्रन्दनकी ज्वाला भरनेके लिये श्रीराधाकृष्णने व्रजका यमुनातट छोड़कर नवद्वीपमें गंगातटपर अवतार लिया, इस तथ्यकी अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर रीतिसे हुई है। मैं सही-सही कह रहा हूँ कि मेरा भावराज्य रुपयेमें बारह आना इस कवितामें उतर आया है।

मैंने विनम्र शब्दोंमें कहा – आठ-नौ मास पहले आपने जो बताया था, वह मैं सर्वथा भूल गया। मैंने रचना करनेमें बड़ी देर कर दी। जब कविता लिखनेके लिये बैठा तो कुछ भी याद नहीं आ रहा था। फिर मैं भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीसे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा। उनकी कृपासे जो स्फुरित हुआ, वही इस कवितामें लिखा गया है।

बाबाने कहा – जो लिखा गया है, वह एक अद्भुत वस्तु है।

फिर बाबाने श्रीडालमियाजीसे कहा – आप इस कविताको छपवा दें।

श्रीडालमियाजी तो छपवानेकी बात सोच ही रहे थे, अब तो बाबाने भी निर्देश दे दिया। वह कविता भी इस विवरणके अन्तमें दी जा रही है।

उस कते हुए सूतके सम्बन्धमें भी एक तथ्यको इस विवरण-क्रममें लिख देनेकी स्फुरणा मनमें हो रही है। जिनको वह कता हुआ सूत बेचा गया था, वे अपने ही एक आत्मीय जन थे और वह सूत उनके पास पूर्णरूपेण सुरक्षित रखा हुआ था। उस कते हुए सूतका वस्त्र यहाँके खादी भण्डारने बनवा दिया और क्या ही सुन्दर बात बन गयी कि ठीक श्रीराधाष्टमीके दिन बाबाने उस वस्त्रको धारण किया। जैसा मैं वस्तुतः चाह रहा था, वैसा घटना-क्रमके अनुसार क्रमशः अपने आप हो गया। मैं इसके बारेमें कुछ कहने या करनेका साहस नहीं कर पा रहा था, पर परम कृपालु भगवानने स्वतः वह ढंग बैठा दिया, जिससे मेरी एक अभिलाषा पूर्ण हो सकी।

सूतको कातने तथा बेचनेका और कविताको रचने तथा सुनानेका जो प्रसंग ऊपर लिखा है, यह सब यहाँ प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। अपनी बात अपने मुँहसे बताना और अपनी कलमसे लिखना कोई अच्छी बात नहीं है। ऐसा होकर भी मैंने लिखनेकी धृष्टता की है। इस लिखनेके पीछे सचमुच मूल प्रेरणा है बाबाके सत्यपरायण जीवनकी एक झाँकी प्रस्तुत करना। बाबा किसी बातकी कितनी अधिक गहराईमें उतरते थे, किसी बातको कितना अधिक परखते थे, किसी बातकी तहतक पहुँचनेके लिये कितनी अधिक खोज-बीन करते थे और शुद्धता-पवित्रता-सत्यताके प्रति कितना अधिक आग्रह रखते थे, इन सबको जाननेके लिये यह प्रसंग एक उदाहरण है। इस प्रसंगके साथ मेरा नाम जुड़ा रहनेसे मुझे वस्तुतः बड़ा संकोच हो रहा है, पर संकोचके भारको मनने सहन किया यही सोचकर कि इससे बाबाके व्यक्तित्वका एक गौरवपूर्ण पक्ष उद्‌घाटित होगा।

वसंत पञ्चमी, सं. २०२० वि. के दिन गीतावाटिका, गोरखपुरमें पढ़ा गया श्रीश्रीविष्णुप्रिया स्तवन

नीरव दिशि-दिशि नीरव निशीथ, नीरव था नभका तारक दल।
नीरव नभ-गंगाके कण-कण, नीरव था नभका नीलाञ्चल।।
उस नीरवतामें था स्पन्दित, नीरव संलाप मृदुल अविरल।
निशिका निशीशका नेह छके, दो हृदयोंका अतिशय निश्छल।।

दो अधर हिले चुपचाप खुले, नभ-गंगाके नव पनघटपर।
दो हृदय इधर उन्मुक्त खिले, नवद्वीप-पार्श्विनीके तटपर।।
था सजा शयन गृह, शय्यापर विकसित पुष्पोंकी नव चादर।
शय्यापर पुष्पोंका वितान, शय्यापर पुष्पोंकी झालर।।

धूप-गंधसे शुचि शोभासे, मुखरित था शयनागार सकल।
शोभाकी शोभा बढ़ी और पा विमल स्नेहकी सुरभि विमल।।
दो स्नेही हृदयोंसे विकसित जो स्नेह लहरियाँ थीं निर्मल।
उनकी सुषमासे शयन-कक्षकी शोभा थी बोझिल प्रतिपल।।

उस शयन-कक्षकी शय्यापर थे परम सुशोभित नित्य युगल।
श्रीविष्णुप्रिया चैतन्य गौर, प्रेमी-प्रेमास्पद नित्य नवल।।

दोनों ही दोनोंमें डूबे, दोनों ही सुखदाता अविरल।
थीं पैर दबाती विष्णुप्रिया, चैतन्य हृदय पुलकित पल-पल।।

कुछ कौतूहल, कुछ उत्सुकता, कुछ जिज्ञासाकी मधुर लहर।
उभरी धीरे-से मन्द-मन्द श्रीविष्णुप्रिया-मुख-मण्डलपर।।
उस नीरवतामें छलक पड़ा भीना-भीना-सा नीरव स्वर।
प्राणोंने पूछा मौन-मौन – ''क्या मैं ही राधा हूँ? प्रियवर''।।

प्राणोंका नीरव प्रश्न सुना – नवद्वीप-पार्श्वनी सुरसरिने।
उस शयन-कक्षके कण-कणने चैतन्य गौरके अन्तरने।।
मौन प्रश्नका दिया मौन उत्तर था अधर-अरुणिमाने।
चैतन्य गौरके अधर-विहारी, नित्य विलासी मधु स्मितने।।

'प्रियतमे! भूल क्या गयी स्वयंको, मुझको, इतनी भोली तुम?
हम नित्य सङ्ग सम्बन्ध नित्य, मैं माधव हूँ, हो राधा तुम'।।
प्राणोंने पूछा पुनः प्रश्न – 'फिर कहाँ तरणिजा-धार परम?
त्यागी क्यों वह स्नेहिल यमुना? सुरसरिता-तीर बसे क्यों हम'?

मूक प्रश्नका मूकोत्तर था तुरत दिया फिर मधु स्मितने।
'पायी मुक्ति परम दुर्लभतम, सुरतरंगिणीसे जगने।।
उस मुक्तिदायिनी सत्ताके कण-कणमें आये हैं भरने।
क्रन्दन-ज्वाला, जिसमें जल-जल नित ज्वलित ज्वालके स्नेह सने'।।

'तो क्या मुझको जलना होगा क्रन्दनकी ज्वालामें? प्रियतम!
क्या मुझको अब बहना होगा, आँसूकी धारामें हरदम'?
''हम तुम एक, अतः प्राणाधिक प्रियतमे! जलो क्यों केवल तुम?
क्रन्दन ज्वालामें साथ-साथ अनवरत जलेंगे दोनों हम'।।

शब्दातीत सरल जिज्ञासा व्यक्त हुई जो बिना शब्द ही।
सरस गरलमय समाधान भी प्राप्त हुआ जो अनायास ही।।
सुना शयनगृहने, शय्याने, सुरसरिने अन्दर-अन्दर ही।
निशि-निशीश, नभ-गंगा, नभके नीलाञ्चलने मौन-मौन ही।।

* * *

जाने कितने तारे टूटे नभके विस्तृत नीलाञ्चल से।
जाने कितने अश्रु बह गये, सुरतरंगिणीके कपोलसे।।
जाने क्यों कहता फिरता है, व्यथित समीरण अपने मुखसे।
व्यथा-तप्त करुणार्द्र कहानी, दो विरही हृदयोंकी जगसे।।

नीलाचलमें नील उदधिके नील तीर पर व्यथित विराजित।
सुध-बुध सभी गौर सुन्दरकी, नील-धारमें बही अपरिमित।।
नीलकृष्णके एक चरणपर, सुख-दुख सब हो गया समर्पित।
'कृष्ण', 'कृष्ण' के करुण रुदनसे दिशा-दिशा हो गयी निनादित।।

रुदन कण्ठमें, रुदन रोममें, रुदन नयनकी हर हलचलमें।
धधक उठी क्रन्दनकी ज्वाला गौर-हृदयके प्रति स्पन्दनमें।।
कृष्णान्वेषण दिनमें, निशिमें, जलमें, नभमें, जड़-चेतनमें।
कृष्ण-विरहकी चिता जल गयी व्यथित गौरके अङ्ग-अङ्गमें।।

एक बह चला सजा चिताको, नीलाचलकी नील धारमें।
एक गयी सम्पूर्ण डूब, अपने आँसूके गहन उदधिमें।।
गौर-हृदयकी नितविहारिणी, जली गौरके विरह-ज्वालमें।
जल-जल बुझना, बुझ-बुझ जलना, शेष यही था उस जीवनमें।।

कितने आँसू हुए प्रवाहित विष्णुप्रियाके तृषित नयन से?
कितनी भीगी साड़ी उतरी, गौर-विरहमें दग्ध बदनसे?
कबसे हो रहा संगमन, सुरतरंगिणीकी धारासे?
सरस्वती-यमुनाका अविरल, निकल-निकलकर शून्य नयनसे?

कैसी चाह मिलनकी भीषण, जली प्रियाके हृदय सदनमें?
कैसा हाहाकार मचा था, तनमें, मनमें और नयनमें?
'हा-हा' भीतर, 'हा-हा' बाहर, भीतर-बाहरके कण-कणमें।
'हा-हा' का रव व्याप्त हो गया, जलमें, थलमें और गगनमें।।

हाहाकार भरे घरमें था कहीं न कुछ भी स्वरका स्पन्दन।
सूनी आँखें, सूना जीवन, सूना घरका सारा आँगन।।
नीरव प्राङ्गणमें बैठी थी, विष्णुप्रिया अति ही नीरव मन।
नमित नयनकी व्यथित अश्रु-धाराने पूछा – ''हे जीवन-धन''।।

तुरत गौर सुन्दरकी मनहर गौर कान्तिसे नित संस्पर्शित।
नील लहरियोंसे ध्वनि आयी-''कहो प्रियतमे! क्या अभिवाञ्छित?''
स्वप्न देशके वीणा-रव-सी, नीरव ध्वनि सुन हुई विकम्पित।
अश्रु-धारकी परमाकुलता मौन-मौन ही हुई निवेदित।।

''कब तक मुझको बहना होगा? क्या सत्य एक यह क्रन्दन है?
जलना-बुझना, बुझना-जलना, क्या यही एक बस जीवन है?
कब तक ये गीले नयन गलें? क्यों दूर हृदयका चन्दन है?
क्या आशा करूँ न दर्शनकी? क्या दासी पूर्ण अभागिन है?''

नील लहरियोंकी नीरव ध्वनि हुई ध्वनित नीरव प्राङ्गणमें।
''हम तुम एक, सदा सङ्गी हैं दुसह विरहके भी प्रसङ्गमें।।
विरह मिलनका पोषक, हम-तुम जलें और भी, प्राणप्रियतमे।
क्रन्दन और हास्यसे ऊपर पुनः मिलन होगा निकुञ्जमें।।

आशा छूटी, बिजली टूटी कलित बेल पर गौर मिलनके।
सम्बल छूटा, तारा टूटे पूर्ण तिमिरमय नीलाम्बरके।।
धीरज छूटा, बन्धन टूटे भग्न हृदयके, नयन-कोषके।
टूट-टूटकर आँसू बिखरे, आँगनमें सम्पूर्ण विश्वके।।

डूब गया वसुधाका आँगन, डूब गया नभका नीलाञ्चल।
डूब गया नवद्वीप-पार्श्विनी सुरतरंगिणीका भी आँचल।।
आँचलकी सारी सत्ता भी डूब गयी आँसूमें गल-गल।
बची समयके दो कपोल पर शुभ्र अश्रुकी धार अनर्गल।।

वही समय साक्षी है जगमें, शुभ्र अश्रुकी शुभ धाराका।
वही समय साक्षी है अब भी, नव निकुञ्जकी शुभ शोभाका।।
जहाँ छिटकता शुभ प्रकाश है, पीली-नीली ललित शिखाका।
जिसके शुभ्रालोक-पुञ्जमें, डूबा कण-कण है अग-जगका।।

* * * * *

कालती बुढ़िया का श्राद्ध-दिवस

बाबूजीके घरमें झाड़ू लगाने, बरतन माँजने आदि कार्यके लिये एक बुढ़िया काम किया करती थी। वह अत्यधिक श्याम वर्णा थी, अतः उसका नाम ही पड़ गया था कालती बुढ़िया। उसका घर गोरखपुर शहरके पास एक देहातमें था, किन्तु वह गीतावाटिकामें ही रहा करती थी। यहाँ काम करते हुए उसे बहुत समय हो गया था।

सम्भवतः सन् १९६४ में उसका देहान्त हो गया। उसके घरवालोंने शवका अग्नि-संस्कार पारिवारिक परम्पराके अनुसार गोरखपुरके किनारे बहनेवाली राप्ती नदीके राजघाटपर किया। उसके परिवारवालोंने अपने घरपर उसका श्राद्ध-कर्म किस प्रकारसे सोलहवें दिन किया, यह मुझे पता नहीं, परन्तु गीतावाटिकामें बाबाने जो श्राद्ध-दिवस मनाया, वह अपने ही ढंगका था।

बाबाने चार-पाँच निज जनोंको अपनी (पुरानीवाली) कुटियाके सामने खुले आकाशमें बैठाया। बिछी हुई दरीके ऊपर ये सभी निज जन बैठे हुए थे। इन लोगोंके पास हरिनाम संकीर्तन करनेके लिये हारमोनियम, झाँझ, ढोलक आदि वाद्य रखे हुए थे। फिर बाबाने इन लोगोंसे षोडश नामात्मक महामन्त्रका कीर्तन आरम्भ करवा दिया। इस हरिनाम संकीर्तनमें बाबाके निर्देशानुसार प्रत्येक बारह मिनटपर एक वाक्य उच्च स्वरसे बोलना पड़ता था। हरिनाम संकीर्तनका शुभारम्भ सूर्योदयके समय हुआ। बाबाने जैसा कहा था, उसके अनुसार वह वाक्य मुझे ही कहना पड़ता था। बारह मिनट बीतनेपर मुझे ही विराम करनेके लिये संकेत देना होता था। श्रीहरिनाम संकीर्तनके विराम होते ही, जैसा बाबाने लिखवा करके दिया था, मुझे बोलना पड़ता था – 'कल्याण' सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके घरमें मातृहृदया कालती बुढ़ियाका आवरण स्वीकार करके झाड़ू-बहारू आदिकी सेवा करनेवाले नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी सदा ही जय हो, जय हो, जय हो।

इतना बोल चुकनेके बाद पुनः महामन्त्रका सुमधुर और पावन संकीर्तन शुरू हो जाता था। संकीर्तनके मध्य हर बारह मिनटपर जय-जयकार बोला जानेवाला यह शुभानुष्ठान लगभग अपराह्न कालतक चलता रहा। कुटियाके वातावरणमें अद्भुत दिव्यता समायी हुई थी। इसके

बाद गीतावाटिकाके सभी नौकरोंको भोजन करवाया गया। भोजन कर रहे थे सेवा करनेवाले नौकर लोग और परोस रहे थे सेवा लेनेवाले मालिक लोग। बाबाकी कुटियाके सामने सम्पन्न होनेवाले श्राद्ध-भोजका यह दृश्य बड़ा ही अनुपम था और सभीके मनपर एक स्थायी और अनोखी छाप छोड़ गया।

* * * * *

पूज्य सेठजीका महाप्रयाण

श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के प्रति बाबाके भावोद्‌गार हैं—

वैकुण्ठ नामकी नगरी थी, ज्ञानी थे एक वहाँ प्रियतम!
राजा विदेहके सदृश भला प्रेमी रघुकुलमणिके प्रियतम!
आदर्श चरित्रोंके वे थे, 'जय सीताराम' तथा प्रियतम!
'नारायण' नाम अधिक उनको प्रिय था ऐसा लगता प्रियतम!

जीवनमें उनके छाया थी उस तुलाधारकी भी प्रियतम!
थे अतिशय सरल, दक्षपर थे जगके व्यवहारोंमें प्रियतम!
देखा था उनको मैंनें जब आकाशचारिणी थी प्रियतम!
होती थी सुनकर फुल्ल सदा प्रवचन पवित्र उनका प्रियतम!

(श्रीसेठजी परम ज्ञानी थे और वे भावात्मक रूपसे वैकुण्ठ अर्थात् विष्णुलोकमें नित्य निवास करते थे। भगवान विष्णु उनके उपास्य थे। वे भगवान विष्णुकी उपासनाके लिये प्रेरणा दिया करते थे। मिथिला पति श्रीविदेहराजके समान वे परम विरक्त और परम तत्त्वज्ञ थे। उनका चरित्र आदर्श था। वे भगवान श्रीराघवेन्द्रके बड़े प्रेमी थे। उनको 'जय सीताराम' और 'नारायण' बड़ा प्रिय था और वे इसीका कीर्तन करवाया करते थे। वैश्यकुलमें उत्पन्न श्रीसेठजीके जीवनमें परम भक्त तुलाधारके समान अति सरलता और अति दक्षता थी। जागतिक व्यवहारमें वे बड़े पटु थे। जब मैं उनके सानिध्यमें आया, तब उनके आध्यात्मिक प्रवचनोंको सुनकर बड़ा प्रफुल्ल हो उठता था।)

सन् १९३६ में बाबा श्रीसेठजीके सम्पर्कमें आये। यद्यपि बाबा श्रीसेठजीके सगुण-साकार-उपासना सम्बन्धित मान्यतासे सहमत नहीं थे,

परन्तु वे मुग्ध थे श्रीसेठजीके निर्गुण-निराकार-तत्त्व सम्बन्धित चिन्तन-मननपर। बाबाके जीवनमें श्रीमद्भगवद्गीताका स्थान अति महत्त्वपूर्ण रहा है और श्रीसेठजीके प्रवचनोंमें श्रीमद्भगवद्गीताके गम्भीर तत्त्वोंका सहज रीतिसे सुन्दर प्रतिपादन देखकर बाबाका अन्तर प्रफुल्लतासे भर जाता था। यही कारण था कि बाबाने श्रीमद्भगवद्गीताकी विशद् टीकाको लिखवानेमें श्रीसेठजीको अपना भरपूर सहयोग दिया। गीताप्रेससे श्रीमद्भगवद्गीताकी विशद् टीका 'गीता तत्त्व विवेचनी'के नामसे प्रकाशित है। इस ग्रन्थमें मूलतःबाबाने अपने हाथसे लिखी है और इस ग्रन्थमें भाव और विचार श्रीसेठजीके हैं, इस सारी टीकाको मूलतः बाबाने अपने हाथसे लिखी है और इस ग्रन्थमें सारी टिप्पणी और सारा संशोधन बाबूजीका किया हुआ है। इस विशद् टीकाको लिखनेमें लगभग तीन साल लग गये।

इस तीन सालकी अवधिमें श्रीसेठजीके बाबाकी कितनी सेवा-सँभाल की और कितना सम्मान दिया, इसकी सराहना करते हुए बाबा थकते नहीं थे। बाबाने स्वयं एक स्थानपर अपनी लेखनीसे लिखा है—

'मै तो श्रीजयदयालजी (श्रीसेठजी) के चरणोंकी जूती बनकर भी उनका ऋण नहीं चुका सकता, क्योंकि तीन साल अपने पास रखकर उन्होंने मुझे इस लायक बनाया कि मैं भाईजीके पास रहनेकी योग्यता प्राप्त कर सकूँ।'

प्रसंगानुरोधसे पूर्व-पृष्ठोंमें वर्णित एक-दो प्रसंगोंकी सांकेतिक आवृत्ति आवश्यक लग रही है। श्रीगीताजीकी टीकाके लेखनका कार्य पूर्ण होनेके बाद श्रीसेठजीकी चाह थी कि बाबा सदा मेरे साथ रहें श्रीमद्भगवद्गीताके संदेशको चारों दिशाओंमें गुँजा देनेके लिये। यह चाह थी श्रीसेठजीकी, परन्तु भगवान श्रीकृष्णकी योजना इससे अलग थी और भगवदीय योजनानुसार बाबा नित्य-संगका संकल्प लेकर बाबूजीके साथ रहने लगे। इस तथ्यपर टिप्पणी करते हुए बाबाने स्वयं लिखा है—

(मेरा श्रीसेठजीके साथ रहना नहीं हो पाया।) मैं क्या करूँ? मेरा मन भाईजीके प्रति ही अधिक खिचता है। इसलिये उनके (श्रीसेठजीके) चरणोंमें सब प्रकारसे न्योछावर होनेकी चाहना करनेपर भी 'किसी खास विशेष पारमार्थिक कारणसे उनकी (श्रीसेठजीकी) बात नहीं मान सकता। वे (श्रीसेठजी) मुझे बहुत प्यारे हैं और मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि उनके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले घनश्यामजी, रामसुखदासजी आदिके चरणोंकी रजको मैं हृदयसे आदर करता हूँ।

जितना आन्तरिक लगाव बाबाका श्रीसेठजीके प्रति था, वैसा ही गहरा लगाव था श्रीसेठजीका बाबाके प्रति। भगवान श्रीकृष्णकी भगवदीय योजनाके अनुसार बाबा नित्य-साथका संकल्प लेकर बाबूजीके साथ गीतावाटिकामें रहने लगे। एक बार परिस्थितिने अनचाहा मोड़ ले लिया। मोड़ ले लिया, इसके स्थानपर यह कहना चाहिये कि मन्थरा-स्वभाववाले एक व्यक्तिने श्रीसेठजी और बाबाके बीच दरार डालनेका कुप्रयास किया। उसको कुछ हद तक अपने कारनामोंमें सफलता भी मिल गयी। उसने कुछ तथ्योंको भद्दे रूपसे तोड़-मरोड़-जोड़ करके और श्रीसेठजीके कथनको अन्यथा अर्थ लगा करके बातोंको इस ढंगसे प्रस्तुत किया कि परिस्थितिने अत्यधिक विकृत रूप ले लिया। इसके फलस्वरूप बाबाके मनमें यह विचार उठने लगा कि यदि श्रीसेठजीको गीतावाटिकामें मेरे रहना उचित नहीं लग रहा है, तो भाईजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) से आज्ञा लेकर मुझे गोरखपुरसे वृन्दावन चले जाना चाहिये।

ज्यों ही मलिन मनोवृत्ति वाले व्यक्तिके काले कारनामोंकी कलई खुली और उसके कुप्रयासका असली रूप सामने आया और ज्यों ही श्रीसेठजीको बिगड़ी परिस्थितिके यथार्थ स्वरूपकी जानकारी मिली, वे गीतावाटिका आये और बाबासे कहने लगे– मैंने ये कब कहा कि स्वामीजी हम लोगोंको छोड़कर चले जायँ। आपके चले जानेके लिये मैंने कभी कहा ही नहीं इतना ही नहीं, इस बातसे सम्बन्धित कोई स्फुरणा मेरे मनमें उदित कभी उदित हुई ही नहीं। मैं तो भगवानसे यहाँतक प्रार्थना करता हूँ कि यदि मेरे प्रसुप्त मनमें इस प्रकारकी कोई बात हो तो वे उसकी छायाको तुरन्त मिटा दें।

श्रीसेठजीके इस उद्गारोंको सुनकर बाबाका मन निर्मल प्यारके प्रवाहमें बह चला। यथार्थ सत्यके प्रखर सूर्यके सामने खल-प्रयासका धुन्ध भला कबतक टिक पाता। अब गीतावाटिकाके वातावरणमें व्याप्त थी दैवीय भावोंकी भगवदीय सुरभि।

श्रीसेठजी चाहते थे कि बाबा नित्य मेरे साथ रहें और बाबा नित्य श्रीसेठजीके साथ रहे, परन्तु प्रकारान्तरसे साथ रहे भगवान श्रीकृष्णकी भगवदीय योजनाके अनुसार। बाबा नित्य साथ रहे बाबूजीके साथ और बाबूजीका नित्य संग बना रहा श्रीसेठजीके साथ। प्रकारान्तरसे बाबा श्रीसेठजीके सदा साथ रहे।

श्रीसेठजी चाहते थे कि श्रीमद्भगवद्गीताके भगवदीय सन्देशके प्रचार-प्रसारके लिये बाबाका सहयोग मिलता रहे और बाबाका सहयोग परोक्ष रूपसे मिलता रहा। श्रीसेठजीके प्रवचनोंमें जिन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन होता था, उन सिध्दान्तोंके प्रत्यक्ष प्रमाणके रूपमें सबके सामने उपस्थित था बाबाका वन्दनीय संन्यासी जीवन। यह सर्व विदित है कि गीताप्रेसका आधार एवं प्राण है श्रीसेठजीका आध्यात्मिक जीवन। इस गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाली हिन्दी पत्रिका 'कल्याण' और अंग्रेजी पत्रिका 'कल्याण कल्पतरु'के सम्पादन कार्यमें तथा गीताप्रेससे मुद्रित होनेवाले आर्षग्रन्थ तथा विविध साहित्यके प्रकाशन-कार्यमें बाबाका सहयोग, वह सहयोग जो समाजके नजरोंसे छिपे रहकर दिया गया है, उस सहयोगकी जानकारी केवल कतिपय अन्तरंग जनोंको है। यथार्थ सत्य यह है कि बाबूजीके माध्यमसे जीवनके अन्ततक श्रीसेठजीका और बाबाका नित्य साथ और नित्य सहयोग बना रहा।

सन् ६३-६४ की अवधिमें इन्हीं महान आध्यात्मिक विभूति श्रीसेठजीका स्वास्थ्य सतत कार्य-परायणताके कारण क्रमशः अधिकाधिक शिथिल होता चला गया। सन् १९६५ के आरम्भमें ऐसा लगने लगा कि जीवनका अन्तिम क्षण अब निकटसे निकटतर होता चला जा रहा है। इन दिनों श्रीसेठजी बाँकुड़ा नगरमें थे। यदि शरीरका अवशान होना ही है तो वह माँ गंगाके तटपर हो, ऐसे विचारोंके उठते ही श्रीसेठजी बाँकुड़ासे प्रस्थान करके ३१ मार्च १९६५ को स्वर्गाश्रम स्थित गीताभवन पहुँच गये।

अकस्मात बाबूजीको गोरखपुरमें यह समाचार मिला कि सेठजीके स्वास्थ्यकी दशा चिन्ताजनक है। इस समाचारके मिलते ही बाबूजी, बाबा और माँजी गोरखपुरसे वायुयान द्वारा रवाना होकर लखनऊ आये और फिर ट्रेनसे चलकर ६ अप्रैल १९६५ को स्वर्गाश्रम पहुँच गये। ज्यों-ज्यों शरीरकी चिन्ता जनित स्थितिका अप्रिय समाचार फैलने लगा, श्रद्धालु और आत्मीयजनोंकी भीड़ गीताभवनमें बढ़ने लगी। १५ अप्रैलको स्वास्थ्यने खतरनाक मोड़ ले लिया। बाबूजी तुरन्त बाबाको साथ लेकर श्रीसेठजीके पास पहुँच गया। स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज वहींपर थे ही। बाबा लगातार दो घण्टेतक श्रीसेठजीके पास बैठे रहे और निरन्तर

नाड़ी देखते रहे। १५ अप्रैल और १६ अप्रैलका दिन अति कष्टमें बीता। इस भीषण कष्टकी स्थितिमें भी नाम-जप लगातार हो रहा था। अधरोंका हिलना और अंगुलियोंकी पोरोंपर अँगुठेका फिरना तथ्यकी साक्षी दे रहे थे। दर्शनार्थ आनेवाले जनोंको प्रणाम करते देखकर श्रीसेठजी बदलेमें सबको संकेतसे राम-राम कहते। १७ अप्रैल १९६५ के अपराह्णकालमें पार्थिव शरीरसे 'हंस' ने 'विदाई' ली और उड़कर अपने देश चला गया।

इस विदाईकी वेलामें बाबा श्रीसेठजीके समीप ही थे। उन्होंने देखा– अद्वैत सिद्धान्तका सूर्य अस्ताचलको चला गया, संतोंसे आध्यात्म ज्ञानकी चर्चा करनेवाला चला गया। साधकोंको पथ बतलानेवाला सिद्ध संत चला गया, अभावसे ग्रस्त जनोंका सच्चा अभिभावक चला गया, धार्मिक संस्था गीताप्रेसका महान संस्थापक चला गया और चल रही थी अश्रुजलकी दो धाराएँ बाबाके दोनों कपोलोंपर। बाबाके नयनोंसे अविरल अश्रुप्रवाह हो रहा था और वे उस पावन पार्थिव शरीरपर रह-रह करके हाथ फेर रहे थे।

शव-यात्रामें बालक-वृद्ध, मालिक-नौकर, गृहस्थ-संन्यासी, मूर्ख-पण्डित, छोटे-बड़े सभी थे। ठीक वट वृक्षके सामने और ठीक भगवती गंगाके तटपर सजी हुई चिताको वह पावन पार्थिव शरीर सौंप दिया गया और चिताके लपटोंको क्या देर लगी उसे आत्मसात् करनेमें। यह सारा दृश्य बाबा अपने शोकाकुल नयनोंसे देख रहे थे और मन-ही-मन जय जयकार कह रहे थे उस महान आध्यात्मिक विभूतिकी।

* * * * *

पण्डित नेहरू के सूक्ष्म-देह से बातचीत

मृत्युके बाद जीवकी क्या गति होती है तथा स्थूल-शरीर, सूक्ष्म-शरीर और कारण शरीरका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है, इसीपर बाबा कुछ बातें अपने अनुभव और अध्ययनके आधारपर बता रहे थे। शव माने है वह स्थूल-शरीर, जिसका सूक्ष्म और कारण शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका हो। यह सम्बन्ध-विच्छेद ही मृत्यु है। मृत्यु होते ही सूक्ष्म-शरीर कर्म फलके अनुसार तुरन्त अन्य लोक या अन्य शरीरमें चला नहीं जाता। यदि शव-रूपात्मक स्थूल-शरीर पड़ा हुआ है तो वह

सूक्ष्म-शरीर आसक्तिके वशीभूत होकर अपने मोहकी तीव्रताके अनुपातमें इस बातके लिये प्रयास करता है कि वह पुनः उस स्थूल-शरीरमें प्रवेश करे, पर सम्बन्ध-सूत्रके विच्छिन्न हो जानेके कारण प्रवेश नहीं कर पाता और स्थूल-शरीरके आस-पास मँडराता रहता है। आस-पास मँडरानेकी अवधि अधिकतम छत्तीस घण्टे होती है। स्थूल-शरीरमें रहते हुए सूक्ष्म शरीरका जिन-जिनसे सम्बन्ध या सम्पर्क हुआ था, उन सभीको वह शवके पास देखता है और पूर्वकी भाँति उन सबसे मिलना-जुलना, बात करना चाहता है, पर अब असहाय है। बाबाने बताया – जब पण्डित श्रीजवाहरलाल नेहरूकी मृत्यु हुई, उनके शवका दाह-संस्कार लगभग तीस घण्टे बाद हुआ था। दोपहरके लगभग उनका शरीरान्त हुआ था और निधनके दूसरे दिन सूर्यास्तके आस-पास चिता प्रज्वलित हुई। जिस दिन चिता जली, उस दिन प्रातः काल अर्थात् उनकी मृत्युके लगभग अट्ठारह-उन्नीस घण्टे बादकी बात है। गोरखपुरकी गीतावाटिकामें स्थित मैं अपनी कुटियामें बैठा था। अचानक मेरे सूक्ष्म-शरीरको दिल्लीमें पण्डित नेहरूके शवके पास पहुँचा दिया गया। मेरा स्थूल-शरीर तो गोरखपुरकी गीतावाटिकाकी कुटियामें ही था। सूक्ष्म-शरीरसे वहाँ पहुँचनेपर यह दिखलायी दिया कि पण्डित नेहरूका सूक्ष्म-शरीर अपने शव-रूपात्मक शरीरके आस-पास मँडरा रहा है। मेरी (अर्थात् मेरे सूक्ष्म-रूपात्मक शरीरकी) उनसे (अर्थात् उनके सूक्ष्म-रूपात्मक शरीरसे) लगभग दो अढ़ाई मिनट बात हुई होगी। मैंने उनसे पूछा – क्या आप ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करते हैं?

मेरे ऐसे पूछनेका एक विशेष हेतु था। अब न तो वे भारतके प्रधानमन्त्री थे और न अब इन्दिराके पिता थे। प्रधानमन्त्री-पदका सारा रोबदाब समाप्त हो चुका था और निज जनोंसे सारा सम्बन्ध छिन्न हो चुका था, ऐसी स्थितिमें उनकी आस्थाके धरातलको मैं जानना चाहता था। जानना इसलिये चाहता था कि उस धरातलमें यदि आस्तिकताके अणु होंगे तो यह आस्तिकता उनके निधनोत्तर जीवनमें सहायक सिद्ध होगी। पण्डित नेहरूके सूक्ष्म-शरीरने उत्तर दिया – हाँ, मैं ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करता हूँ।

उनसे यह उत्तर पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। इसके बाद मैंने दूसरा

प्रश्न किया – क्या आप प्रसन्न हैं?

इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा – नहीं, मैं प्रसन्न नहीं हूँ।

इसके बाद उनसे और भी कई बातें हुईं, जिनको मैं यहाँ बता नहीं सकता। दो-अढ़ाई मिनटके बाद मैं पुनः गीतावाटिकाकी कुटियामें पहुँचा दिया गया। उन्होंने जो कहा कि मैं प्रसन्न नहीं हूँ, वह ठीक ही कहा। प्रसन्न वही हो सकता है और वही रह सकता है, जिसके मानव शरीरमें कर्म श्रेष्ठ रहे होंगे। उस सूक्ष्म-शरीरमें अब प्रधानमन्त्रीपनेका रोबदाब काम तो करेगा नहीं। वह तो इस मृत्यु लोकसे परेका जगत है, जहाँ खरे सत्यका साम्राज्य है। हाँ, इतना जरूर है कि उनके सूक्ष्म-शरीरकी किरणें उत्तम कोटि की थीं। उनके जीवनमें अनेक गुण थे। यही कारण था कि उनके चतुर्दिक् व्याप्त प्रभा-मण्डल भी उत्तम कोटिका था।

बाबाने बतलाया – मेरा सम्पर्क राष्ट्रपति डा. श्रीराजेन्द्र प्रसादजीसे भी रहा है। श्रीलालबहादुर शास्त्रीसे भी मैं प्रभावित हूँ। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक उच्चस्तरीय नेताओंसे मेरी निकटता रही है, पर इस प्रकारकी बातचीत (अर्थात् उस नेताके निधनके बाद उनके सूक्ष्म-शरीरसे बातचीत) केवल पण्डित नेहरूके साथ ही हो सकी।

* * * * *

रसकी बूँदें

एक बार बाबूजी और बाबा दिल्ली पधारे और ये ठहरे आदरणीय श्रीरामकृष्णजी डालमियाके निवास स्थानपर। बाबूजी तो अपने किसी विशेष कार्यसे अन्य स्थानपर चले गये थे, पर इधर बाबाके समीप आध्यात्मिक सांनिध्यकी प्यास लिये अनेक व्यक्ति बैठे हुए थे।

इसी समय आदरणीया श्रीद्रौपदीबाई रायजादा अपने साथ तरबूजका एक टोकरा लेकर आयीं और बड़े भक्ति-भाव पूर्वक बाबाको प्रणाम किया। स्नेहसनी भाषामें बाईका सम्मान करते हुए बाबाने पूछा – टोकरा लिये हुए यह व्यक्ति तुम्हारे साथ आया है क्या?

श्रीद्रौपदीबाई – हाँ, बाबा! यह व्यक्ति अपना ही है और ये

तरबूज मैं आपके लिये लायी हूँ। घरपर एक छोटी बगीची है, उसीमें ये लगे थे।

बाबा – अच्छा, तो इन तरबूजोंको बिनारो-सुधारो और बैठे हुए इन सभी लोगोंको खिलाओ।

यह तो श्रीद्रौपदीबाईके मनकी बात थी। उनका मन प्रसन्नतासे भर गया। उन्होंने अपने व्यक्तिसे चाकू मँगवाया और तरबूजको बिनारकर-सुधारकर उसकी फाँके बाबाको देने लगीं। बाबा फाँकोंको अपने हाथसे उपस्थित लोगोंको खानेके लिये देते जा रहे थे। बाबा द्वारा वितरण तथा स्वजनों द्वारा आस्वादन, इससे वहाँका वातावरण बड़ा ही उल्लासभरा-प्यारभरा हो रहा था। बाबा अपने हाथसे तरबूजकी फाँकें दे रहे हैं, यह दृश्य ही सबको प्रीतिकी धारामें बहाये ले जा रहा था। तरबूज भी बड़ा स्वादिष्ट था और उसके बिनारने- सुधारने-देने-खानेके रसमें निमग्न रहनेसे किसीको भी भान रहा ही नहीं कि वह टोकरा कब खाली हो गया। प्यारके प्रवाहमें ऐसा ध्यान रख सकना सम्भव था भी नहीं। जब टोकरेके तरबूज समाप्त हो गये तो श्रीद्रौपदीबाईने अपने हाथका चाकू भूमिपर रख दिया। बाबा तो इस आशामें थे कि वितरणके लिये तरबूजकी फाँकें और मिलेंगी, पर चाकूको भूमिपर रखते हुए देखकर विस्मयके स्वरमें बाबाने पूछा – क्या टोकरा खाली हो गया?

श्रीद्रौपदीबाईके अधर तो मौन रहे, पर उनके दो नेत्रोंने बता दिया कि आपका कथन यथार्थ है। इस तथ्यका आभास मिलते ही बाबाको एक खेद हुआ और उस खेदको व्यक्त करते हुए वे बाईसे बोल पड़े – अरे, तेरे लिये तो बचा ही नहीं!

भले ही श्रीद्रौपदीबाईने बोलकर उत्तर नहीं दिया, पर उनका मन बार-बार यही कह रहा था कि इन लोगोंके मुखसे मैंने ही खाया है और यह क्या मेरे लिये कम सौभाग्यकी बात है कि तरबूजकी फाँकोंका वितरण आपके कर-पल्लवसे हुआ। यह आन्तरिक समाधान श्रीद्रौपदीबाईके अन्तरका था, पर बाबाका आतुर अन्तर आकुल था कि बाईको कुछ-न-कुछ मिलना ही चाहिये। बाबाने उसी समय बाईसे कहा – तुम यह चाकू कुछ ऊपरसे मेरी हथेलीपर रख दो।

उपस्थित लोगोकी कौतूहल और जिज्ञासासे भरी दृष्टि बाबापर

ठहर गयी और दृष्टिको टिकाये-टिकाये वे लोग सोचने लगे – तरबूज तो समाप्त हो गये हैं और अब चाकू लेकर बाबा क्या करेंगे?

सभीका कौतूहल-भरा चिन्तन अपने-अपने ढंगका था, पर किसीमें यह पूछनेका साहस नहीं था कि अब आप चाकू लेकर क्या करेंगे। बस, सब दृष्टि गड़ाये बाबाकी ओर देख रहे थे। सबने देखा यह कि बाबाने चाकूसे काछ करके अपनी हथेलीपर लगे रसको इकट्ठा किया और चाकूपरसे रसकी बूँदोंको अपनी अँगुलीपर लेकर श्रीद्रौपदीबाईसे कहा – अपनी हथेली पसार।

श्रीद्रौपदीबाईने अपनी हथेली पसार दी और बाबाने इकट्ठे किये हुए चार-पाँच बूँदोंको उसकी हथेलीपर चुआकर कहा – बाई! ये बूँदें ही तुम्हारा भाग हैं।

बाबाके ऐसा करते ही बाईकी आँखें भर आयीं और भरे-भरे मनसे उन्होंने इन बूँदोंको अपने अधरोंपर रख लिया। उपस्थित लोग बाबाके प्यारकी इस निराली रीतिको देख रहे थे और उन लोगोंमेंसे कोई सरस हो रहा था, कोई सजल हो रहा था, कोई सराह रहा था और कोई सिहर रहा था।

श्रीद्रौपदीबाई जब-जब उस प्रसंगकी चर्चा करती हैं, तब-तब वे रसकी बूँदें उनकी आँखोंके कोनोंमें छलकने लगती है। रसकी वे दो-चार बूँदें सरस नयनोंकी असंख्य बूँदोंके रूपमें ढलकर न जाने कितने-कितने सहृदयोंको प्यारका रसास्वादन कलतक कराती रही हैं और सदा कराती रहेंगी।

* * * * *

व्रज-रस के पदों का गायन

बाबाका कठोर काष्ठ मौन व्रत सन् १९६२ के आते-आतेतक बहुत शिथिल हो गया था। इसके एक या दो वर्षके बाद सम्भवतः १९६४ की बात है। बाबाने चार व्यक्तियोंसे कहा – आप लोग मेरे पास यहाँ गीतावाटिकामें रहें और यहाँ रहते हुए व्रजभावके पद मुझे सुना दिया करें।

ये चार व्यक्ति थे श्रीहरिवल्लभजी, श्रीठाकुरजी, श्रीवल्लभजी और

श्रीअबीरचन्दजी। इन चारों व्यक्तियोंके साथ भाई श्रीनटवरजीका नाम भी पाँचवें व्यक्तिके रूपमें जोड़ा जा सकता है, जो श्रीवल्लभजी और श्रीअबीरचन्दजीके गायन-वादनमें सहायक थे। गायनके क्रमकी व्यवस्था निर्धारित करते समय हुआ यह कि श्रीहरिवल्लभजी और श्रीठाकुरजीका एक जोड़ा बन गया और श्रीवल्लभजी और श्रीअबीरचन्दजीका दूसरा जोड़ा। जिस समय पद-गायनकी व्यवस्था हुई थी, उस समय ठाकुरजी गीतावाटिकामें लगातार चार माहतक रहे थे। जिस दिन ध्रुपद-धमारके पद होते थे, उस दिन चारों व्यक्ति साथ बैठते थे। ध्रुपद-धमारके पद चाहे वे वसन्तके हों या होलीके या झूलनके, इनमें समय और श्रम अधिक लगता था, अतः उन चारों लोगोंका साथ बैठना आवश्यक था। बाबा कुटियाके बाहर आकर ठीक समयसे बैठ जाया करते थे और गायकोंके लिये अलग लम्बे-लम्बे पाटे बिछा दिये जाते थे। कुटियाके बाहर केलेके बड़े-बड़े पेड़ थे। यह हरी-भरी कदली कुञ्ज बड़ी लुभावनी बड़ी सुहावनी लगती थी। इसी कदली कुञ्जमें इन पदोंका गायन हुआ करता था। पदोंका गायन प्रातः नौ बजेसे ग्यारह बजेतक अर्थात् दो घण्टे हुआ करता था।

बाबाको पद सुनानेके ढंगमें अनेक बार कई प्रकारके परिवर्तन हुए। एक बार ऐसा क्रम बना कि प्रातःकाल पदोंका गायन आरम्भ होता और वह गायन अपराह्न कालतक चलता रहता। सारे दिन पदोंके गायनमें गायक ये ही पाँच थे। प्रातःकाल गायनका आरम्भ करते थे श्रीवल्लभजी और श्रीअबीरचन्दजी। कुटियाके पास उन दिनों एक विचित्र-सा वृन्दावनी रसमयताका वातावरण बना रहता था।

* * *

एक बार ऐसा हुआ कि ठाकुरजी अपने हाथमें तानपूरा लेकर इस प्रकार बजा रहे थे मानो सितार बजा रहे हों। वे तानपूराके तारोंको सितार सरीखे बजाते हुए टुन-टुनका मधुर स्वर निकाल रहे थे। श्रीठाकुरजीकी इस चेष्टाको बाबा दूरसे एकटक देख रहे थे और वे बहुत देरतक देखते रहे। तभी बाबाके मनमें यह भाव उभरा कि वीणा मँगवानी चाहिये। उसी समय बाबाने चिम्मनलालजी गोस्वामीको बुलवाया

और कहा – गोस्वामिपाद! आप कलकत्ता श्रीफोगलाजीके पास एक पत्र लिख दें कि वे एक उत्कृष्ट वीणा खरीद करके इस मासके अन्ततक यहाँ गीतावाटिका भिजवा दें।

गोस्वामीजीने कलकत्ते पत्र लिख दिया। कलकत्तेसे उत्तर यह आया कि वीणा मुख्यतः तीन प्रकारकी होती है। सरस्वती वीणा, रुद्र वीणा और विचित्र वीणा, इन तीनोंमेंसे कौन-सी वीणा चाहिये। इसे सुनकर बाबाने कहा – सर्वोत्तम सरस्वती वीणा है और इसीको मँगवाना है।

गोस्वामीजीने सरस्वती वीणा भिजवानेके लिये कलकत्ते श्रीफोगलाजीके पास पत्र लिख दिया। वह सरस्वती वीणा तुरन्त नहीं आ सकी। उसके आनेमें विलम्ब तो हुआ, पर आ गयी। वह बड़ी विशाल वीणा थी। इसके दोनों ओर बहुत बड़े-बड़े तुम्बे लगे हुए थे। प्रत्येक तुम्बेकी गोलाईका व्यास लगभग डेढ़ फीट होना चाहिये। यह वीणा लगभग पाँच फीट लम्बी थी। एक दिन शुभ मुहूर्तमें बाबाने उस सरस्वती वीणाका पूजन किया। उस दिन उन्होंने उसपर जो चन्दन चढ़ाया, वह आजतक उस वीणापर सुशोभित है। फिर बाबाने ठाकुरजीसे कहा – अब तुम बजाकर सुनाओ।

ठाकुरजीको सारंगी बजाना आता था, किन्तु उनको वीणा-वादनका अभ्यास नहीं था। श्रीठाकुरजीने दबे स्वरमें कहा – बाबा! मुझे वीणा बजानी नहीं आती।

बाबाने कहा – तुम संकोचको छोड़कर बजाओ। यह मेरा अपना 'खेल' है और अपने ही ढंगका है। किसी अन्यको नहीं सुनाना है। मैं तो अपने आनन्दके लिये सुनना चाहता हूँ।

ठाकुरजीने श्रीसरस्वती वीणाको मस्तक टेककर प्रणाम किया और फिर वे बजानेके लिये बैठ गये। तन्तु वाद्य बाबाको स्वभावतः प्रिय हैं। ज्यों ही श्रीठाकुरजीने उसके तारोंको छेड़ा और छेड़नेसे जो स्वर-लहरी प्रवाहित हुई, वह लहरी बाबाको न जाने कहाँ-से-कहाँ बहा ले गयी। बाबाको बड़ा सुख मिला। उन्होंने ठाकुरजीसे कहा – तुम प्रत्येक राधाष्टमीको यह वीणा सुना दिया करो, भले पाँच मिनट ही सुनाओ।

एक दिन एक और विचित्र घटना हो गयी। जब व्रजभावके पद

गाये जा रहे थे, तब वहाँ कोई व्यक्ति बालूपर 'राधा' नाम लिखकर चला गया। कुटियाके सामने बालू फैली हुई थी और उसी बालूपर उसने अपनी अँगुलीसे लिख दिया था। पद-गानके कार्यक्रमके बाद बाबाकी उसपर दृष्टि गयी। दृष्टि-पथमें आते ही बाबा उसके पास बैठ गये और विचार मग्न हो गये। ठाकुरजी सोचने लगे कि अचानक क्या समस्या उपस्थित हो गयी अथवा क्या बात बिगड़ गयी, जो बाबा यहाँ बैठ गये। ठाकुरजीने उनसे पूछा – बाबा! क्या बात हो गयी?

बाबाने कहा – ठाकुर! क्या बतलाऊँ? एक बड़ी उलझन सामने आ गयी है।

ठाकुरजी – क्या हुआ?

बाबा – देखो। किसीने यहाँ बालूपर 'राधा' नाम लिख दिया है और लिख करके चल दिया। अब यदि किसीका पैर इसपर पड़ जायेगा तो कितना बुरा होगा। जिसने लिखा, उसको इस नामके महत्त्वकी जानकारी नहीं। उसकी असावधानीमें या प्रमादसे कितना अनुचित कार्य हो गया। जबतक मैं इसकी कोई व्यवस्था न कर दूँ, तबतक मैं यहाँ बैठा रहूँगा।

ठाकुरजी – बाबा! क्या मैं बैठ जाऊँ यहाँपर?

बाबाने कुछ झुँझलाये स्वरमें कहा – तुम्हारे बैठनेसे क्या बात बन जायेगी? तुम्हारे बैठनेसे क्या होनेवाला है? तुम कबतक बैठे रहोगे? केवल बैठना कोई हल तो है नहीं।

अब ठाकुरजी चुप और बाबा भी चुप थे। कुछ देरतक दोनों चुपचाप रहे। इसके बाद बाबाने अपना उत्तरीय फैलाया। उन्होंने अपने उत्तरीयके आँचलमें वह सारी बालू, जहाँ 'राधा' नाम लिखा था, उसको बिटोर करके रख लिया। फिर उसे लेकर वे अपनी कुटियाके बाड़ेके भीतर गये। वहाँ तुलसीजीका एक गमला था। बाबा तुलसीजीका पूजन और वन्दन नित्य किया करते थे। उस गमलेके चारों ओर बाबाने उस बालूको फैला दिया। बाबाकी इस राधा-नाम-निष्ठाको देखकर श्रीठाकुरजीका हृदय बड़ा विह्वल हो रहा था और वे मन-ही-मन सराहना कर रहे थे।

श्रीसरस्वती वीणा और राधानामकी चर्चा बीचमें आवश्यक होनेसे आ गयी। बाबाकी कुटियाके सामने व्रजभावके पद जब ये गायक लोग गाया करते थे, तब वहाँ निकुञ्जका भावराज्य अवतरित हो उठता था।

जो-जो इस कार्यक्रमको सुननेके लिये बैठते थे, उनके अन्तरमें व्रजभावकी सरिता लहराती रहती थी और उनके मानस-पटलपर प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवकी लीला चलती रहती थी। अहर्निश एक नशा छाया रहता था। सांसारिकता नामकी कोई चीज है, इसका भान ही नहीं होता था। चित्तकी वृत्ति जागतिक धरातलसे उठकर, बहुत अधिक ऊपर उठकर निरन्तर दिव्य लीला राज्यमें विहरण करती रहती थी। पदोंके गायनसे दिव्य रंगका सागर ऐसा उमड़ता रहता था कि मन-मस्तिष्क उसीसे संसिक्त रहते थे।

एक दिन होलीका रंगभरा उल्लास पदोंके गायनके माध्यमसे गीतावाटिकाके कदली कुञ्जमें छलक रहा था, तभी एक अनचाही परिस्थिति सामने आ गयी। एक सज्जन थे, जिनको ऐसा लगा कि इस प्रकारके उन्मुक्त हास-विलासका गायन तो बड़ा अनुचित है। उसकी चर्चा ही जब अनुचित है, तब उसका गायन तो सर्वथा वर्जनीय है। जो चीज वस्तुतः आलोचनीय है, उसीको यहाँपर खुले रूपमें सारे संकोच और सारी मर्यादाको किनारे रखकर गाया जा रहा है। जिस गीतावाटिकाके हाथमें धार्मिकताका ध्वज है, उस ध्वजके नीचे यह सब होना ही नहीं चाहिये। उन्होंने जाकर बाबूजीसे शिकायत की। थोड़ी देर बाद बाबूजीने बाबासे कहा – लोगोंका स्तर एक-सा नहीं होता। मानसिक धरातल भिन्न-भिन्न होनेसे समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। सामान्य लोगोंकी पात्रता ऐसी नहीं होती कि व्रजभावके गम्भीर पदोंको यथार्थ रूपमें ग्रहण कर सकें, अतः इस प्रकारकी अपचर्चाको उठने और फैलनेके लिये अवसर ही क्यों दिया जाय?

बाबूजीने यह बात ज्यों ही कही, उसी समय बाबाने गायन-वादनके सारे कार्यक्रमको एकदम विराम दे दिया। प्रातःकालसे जो पदगान हो रहा था, वह दोपहरतक हो पाया होगा कि सब विसर्जित हो गया। तुरन्त पूर्णतः विराम दे देनेसे सारा वातावरण ऐसा गमगीन हो गया मानो किसी कोमल लतिकापर घोर हिमपात हो गया हो। बाबाको तो बाबूजीकी रुचिके अनुसार करना है। भावुक भक्तोंको यह विराम बड़ा चुभ रहा था, पर विवशता थी। पदोंके गायनका यह कार्यक्रम केवल चार मासतक चल पाया। इसके बाद सभी गायक लोग अपने-अपने स्थानको चले गये।

* * * * *